नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

अनुराग-
पुस्तकालय
एवं
वाचनालय

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 8 अंक 2-3 संयुक्तांक
अप्रैल - मार्च 2006 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

बुश-मनमोहन करार : भारतीय-अमेरिकी पूँजी की खतरनाक साँठगाँठ

देशी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के गँठजोड़ के खिलाफ निर्णायक संघर्ष की सही दिशा अपनाओ!

सम्पादक

साम्राज्यवादी लुटेरों का सरगना जार्ज बुश बड़े बिरादर की तरह मनमोहन सिंह के बाद परवेज मुशर्रफ की पीठ भी थपथपाते हुए वाशिंगटन लौट चुका है। अखबारों और खबरिया चैनलों पर बुश-मनमोहन करार के नफे-नुकसान पर चर्चाएं जारी हैं। देशहित के नाम पर भारतीय शासक वर्ग और अमेरिकी साम्राज्यवाद की बढ़ती नजदीकियों देश की मेहनतकश जनता के लिए क्या मायने रखती हैं? इस पर सही समझ बनाना साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को निर्णायक मुकाम तक पहुँचाने के लिए बेहद जरूरी है।

सबसे पहले तो यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि भारत-अमेरिका की यह गाढ़ी होती दोस्ती केवल बुश-मनमोहन की यारी है या महज कांग्रेस-भाजपा की अमेरिकापरस्ती है। जिस तरह मनमोहन सरकार ने बुश को खुश करने के लिए पलक-पाँवड़े बिछाये और भाजपा ने बुश की वापसी तक चुप्पी साधे रखी उससे यह भ्रम पैदा होना कुछ हद तक लाजिमी है। जिस तरह प्रोटोकाल को नजरअन्दाज करता हुआ देशी पूँजीपतियों का पिट्ठू नुमाइन्दा बुश की अगवानी में हवाई अड्डे तक जा पहुँचा और दूसरी तरफ सरकारी वामपन्थियों ने समाजवादी पार्टी और कुछ अन्य क्षेत्रीय पार्टियों के साथ मिलकर साम्राज्यवाद-विरोध का जो स्वांग रचा उससे भी यह भ्रम पैदा हुआ।

सच यह है कि अमेरिका से बढ़ती नजदीकियों से समूची हुकूमती जमातें गदगद हैं। कौन नहीं जानता कि अमेरिकी पूँजी को लुभाने के लिए कॉंग्रेस और भाजपा ही नहीं विभिन्न प्रदेशों में सरकार चलाने वाली सभी पार्टियाँ एक दूसरे से होड़ मचाये हुए हैं। न मुलायम सिंह यादव इसमें पीछे हैं और न बुद्धदेव भट्टाचार्य। फिर अमेरिकी लुटेरी पूँजी के आला नुमाइन्दे की भारत यात्रा पर विरोध की यह नौटंकी क्यों?

मुलायम सिंह यादव के लिए बुश का विरोध करने का बिलकुल सीधा अर्थ है मुस्लिम वोटों का उनके पक्ष में ठोस ध्रुवीकरण। अफगानिस्तान और इराक के नरसंहारों के बाद खासतौर पर समूचे मुस्लिम जगत में बुश के खिलाफ नफरत और गुस्से का जो उफान है उसे भुनाने के लिए बुश की यात्रा का विरोध करने से बेहतर मौका मुलायम के लिए क्या हो सकता था! पैगम्बर के कार्टून प्रकरण पर मुस्लिम जगत के गुस्से को हवा देने के लिए हाजी याकूब कुरैशी को आगे करके मुलायम सिंह यादव ने जो दाँव चला था बुश का विरोध भी उसी की एक और कड़ी है। जनता की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपये फूँककर बिल क्लिण्टन का लखनऊ में राजसी स्वागत करना अमेरिकापरस्ती नहीं है लेकिन दिल्ली में बुश का स्वागत मुलायम की नजर में अमेरिकापरस्ती हो जाती है और वह अपनी लाल टोपी की धूल झाड़ते हुए रामलीला मैदान में प्रकाश करात और जत्थेदार कामरेड हरकिशन सिंह सुरजीत के साथ गर्मागर्म साम्राज्यवाद विरोधी भाषण झाड़ आते हैं।

पाखण्ड रचने के मामले में सरकारी वामपन्थियों ने अपने सभी बुर्जुआ विरादरों को पछाड़ दिया है। सर्वहारा क्रान्ति के असली लाल झण्डे को तो ये आधी सदी पहले ही धूल में फेंक चुके हैं और मज़दूर वर्ग की पीठ में छुरा भोंककर संसदीय सुअरबाड़े की गन्दगी में लोट लगा रहे हैं। लेकिन इनकी मजबूरी यह है कि बंगाल, केरल, त्रिपुरा आदि राज्यों और संगठित क्षेत्र के मजदूरों के बीच अपने चनावी जनाधारा को बचाने के लिए उन्हें बीच-बीच में संघर्ष के कुछ अनुष्ठान, कुछ रस्मी कवायदें करते रहना पड़ता है। देश के पूँजीपति वर्ग और अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय पूँजी का विश्वास हासिल करने के लिए बुर्जुआ जनतंत्र के ये लाल कलगी वाले मुर्गे स्वीकार कर चुके हैं कि विदेशी पूँजी से इनका कोई उसूली विरोध नहीं है। विरोध उसकी आवक की रफ्तार और तौर-तरीकों को लेकर है। लेकिन अपने चुनावी जनाधार और कतारों पर पकड़ बनाये रखने के लिए साम्राज्यवाद विरोध का पाखण्ड रचने के माकूल अवसर का लाभ उठाने में वे क्यों चूकेंगे भला! बुश की यात्रा का विरोध उन्होंने इसलिए नहीं किया कि वे साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिए मेहनतकश जनता को जगाना चाहते थे। विरोध महज इसलिए था कि संसदीय राजनीति का उनका धन्धा-पानी चलता रहे। इसी मजबूरी के वास्ते वे बीच-बीच में मनमोहन सरकार की आर्थिक नीतियों के खिलाफ भी लाल-पीले होते रहते हैं। यह नाटक इतनी बार दुहराया जा चुका है कि अब आम आदमी भी यह समझ चुका है कि गर्जन-तर्जन के बाद जब 'कॉमरेड लोग' दस जनपथ से लौटेंगे तो सारी हवा निकल चुकी रहेगी।

बहरहाल, बुश की वापसी के बाद जब भारतीय एकाधिकारी पूँजी का नुमाइन्दा संसद में बयान देगा कि उसने अमेरिकी साम्राज्यवादी पूँजी के नुमाइन्दे के साथ 'देशहित में' क्या करार किया है तो संसद के भीतर सरकारी कॉमरेड और मुलायम ब्रिगेड एक बार और होहल्ला मचायेंगे। फिर अगले चुनावों तक विरोध की इस हुण्डी को भुनाते

(पेज 4 पर जारी)

आम आदमी की थोथी दुहाई, मध्यम वर्ग को लालीपॉप और मुनाफाखोरों को भरपूर मलाई

विशेष संवाददाता

यूपीए सरकार कातीसरा बजट पेश करते हुए पी. चिदम्बरम ने एक बार फिर साबित किया कि वह पूँजीपतियों के भरोसेमन्द खादिम हैं। मक्कार मुनीम तो खैर वह हैं ही। अपने बजट भाषण में उन्होंने आम आदमी की बार-बार दुहाई दी लेकिन जब ठोस प्रस्तावों की बारी आयी तो आम आदमी को ओस चाटकर प्यास बुझाने की तजवीज कर दी, जबकि अपने आकाओं की चाहतों-जरूरतों का भरपूर ख्याल रखा। साथ ही, सरकार के सहयोगी वामपन्थियों की चुनावी जरूरतों को भी उन्होंने नजरअन्दाज नहीं किया है। इस बार के बजट में उदारीकरण-निजीकरण की जारी प्रक्रिया को बहुत तेज करने वाला कोई महत्वपूर्ण नीतिगत फैसला चिदम्बरम ने नहीं लिया है लेकिन फिर भी इसका पूरा ख्याल रखा है कि भूमण्डलीकरण की गाड़ी अगले स्टेशन तक बिना किसी अड़चन के पहुँच जाये। तब तक पश्चिम बंगाल, केरल सहित पाँच विधानसभाओं के चुनाव सिर से गुजर जायेंगे फिर इस गाड़ी को एक्सप्रेस हाइवे पर उतार दिया जायेगा।

इस बार के बजट में आयकर और निगम कर के ढाँचे के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गयी है। छह में से एक चीज रखने वालों को आयकर रिटर्न भरने की अनिवार्यता भी उन्होंने खत्म कर दी है। मध्य वर्ग भी खुश

केन्द्रीय बजट 2006-07

और कारपोरेट जगत भी। यह सौगात खासकर अपने सहयोगी वामपन्थियों के लिए चिदम्बरम ने दी है। पश्चिम बंगाल और केरल का पढ़ा-लिखा नौकरीपेशा शहरी मध्यवर्ग इस रियायत से खुश होकर सोचेगा कि चलो उसकी चहेती पार्टी द्वारा सरकार को समर्थन का इतना फायदा तो हुआ। इनका वोट तो चुनावी कॉमरेडों की झोली में धकाधक गिरेगा। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश की कोई सूची भी चिदम्बरम ने इस बार नहीं बनायी है और किसी महत्वपूर्ण क्षेत्र में विदेशी पूँजी के लिए दरवाजा भी नहीं खोला है। साथ ही श्रम कानूनों में बदलाव को भी फिलहाल वह टाल गये हैं। इससे संगठित क्षेत्र के मजदूर वर्ग का गुस्सा शान्त रहेगा, सरकारी कॉमरेडों पर उनका भरोसा नहीं टूटने पायेगा और वे चुनावी लाभ बटोर ले जायेंगे। राष्ट्रीय जूट बोर्ड कायम करने की घोषणा कर चिदम्बरम ने कॉमरेडों को गदगद कर दिया है।

जिस आम आदमी की दुहाई दी गयी है उसे वित्त मंत्री महोदय ने क्या दिया है? राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना, सर्वशिक्षा अभियान, मिड डे मील आदि तथाकथित गरीबपरवर योजनाओं के मदों में मामूली बढ़ोत्तरी, ऊँट के मुँह में जीरा के बराबर। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के मद को ही लें इसमें कुल 14300 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया है। पिछली एक फरवरी को यह योजना लागू होने के बाद से केवल 15 दिनों के भीतर देश भर के 200 जिलों में लगभग 77

(पेज 6 पर जारी)

आपस की बात

पूँजीवादी अखबार का झूठ और सिडकुल का सच

27 फरवरी के एक दैनिक अखबार में छपा है कि सिडकुल में इस समय स्थापित 18 उद्योगों में 2527 लोग काम कर रहे हैं। इनमें 78 फीसदी उत्तरांचल के मूल निवासी हैं। उसने ब्रिटानिया, डाबर, पारले, रेडएंट, मॉलीमर, एक्मे टेलीपावर, ओबीटी एक्सटाइल्स, इंटर आर्क व्लडिंग, भास्कर एनर्जी कारखानों में 2527 लोगों को रोजगार मिलने और इनमें 1972 कर्मचारी उत्तरांचल मूल का होने की बात लिखी है।

इस समाचार के साथ कबीना मंत्री इन्दिरा हृदयेश का बॉक्स में समाचार छपा है- 'नाहक शोर मचा रहा है विपक्ष'। उन्होंने राज्य में 40 हजार करोड़ के विकास कार्य की बात कही है जिसमें 25 हजार करोड़ उद्योगों के विकास पर खर्च हो रहा है।

पहली बात, अखबार की रिपोर्ट पूरी तरह झूठी है। लगता ऐसा है कि कबीना मंत्री को खुश करने के लिए या फिर उनके द्वारा प्रायोजित रिपोर्ट छापी गयी है। सच तो यह है कि पूरे सिडकुल में ठेकेदारी का बोलबाला है। दिहाड़ी पाने के लिए भी इन ठेकेदारों को घूस देनी पड़ती है। कुछ मजदूरों को कम्पनी ने सीधे रख भी लिया है तो वे न तो केजुअल हैं न ही परमानेंट। इण्टरव्यू लेकर भी लेटर नहीं दिया है, हाँ वर्दी जरूर दे दी है।

दूसरी बात, मजदूरों का कोई अपना देश, प्रदेश या क्षेत्र नहीं होता। नौकरी भले ही किसी को न मिले लेकिन स्थानीय बनाम बाहरी और पहाड़ बनाम मैदान के झगड़े का बीज जरूर बो दिया गया है। ठीक वैसे ही जैसे आरक्षण के नाम पर अगड़ों और पिछड़ों को लड़ाया जाता है। इससे किसी भी तबके को रोजगार नहीं मिलता, उल्टे आपसी बँटवारे जरूर पैदा हो जाते हैं। वैसे सच्चाई यह है कि सिडकुल के कारखानों में जो थोड़ी बहुत परमानेंट भरती हुई भी है वह टेक्निकल पदों पर है और उसमें ज्यादातर बाहरी ही हैं।

तीसरी बात, कबीना मंत्री जिस विकास की बात कर रही हैं उसमें उत्तरांचल राज्य की आम जनता का तो कहीं विकास हो नहीं रहा है। विकास पूँजीपतियों, विधायकों-मंत्रियों, ठेकेदारों, लुटेरों और पैसेवालों का हो रहा है। खुद मंत्री के अनुसार 40 हजार करोड़ में से 25 हजार करोड़ उद्योगों (पूँजीपतियों) के विकास के लिए है, जहाँ पक्की नौकरी की कोई गारण्टी नहीं। इसी तरह हल्द्वानी, ऊधम सिंह नगर, हरिद्वार और देहरादून यानी मैदानी इलाके में तो विकास के नाम पर पैसा पानी की तरह बह रहा है लेकिन पहाड़ी इलाके सूखे हैं। कुल मिलाकर अमीर और अमीर बन रहे हैं तथा गरीब और गरीब।

रही बात सिडकुल की, तो यहां की स्थिति काफी भयानक है। श्रम कानूनों का कहीं कोई पालन नहीं हो रहा है। ज्यादातर जगह 12-12 घण्टे की ड्यूटी है और दो-ढाई हजार का वेतन। कहीं-कहीं तो पन्द्रह सौ रुपये पर भी लोग खट रहे हैं। कई सिक्योरिटी एजेंसियां खुली हुई हैं जो कारखानों में गार्डों को 21-22 सौ रुपये मासिक वेतन पर 12-12 घण्टे खटाती हैं। यही नहीं, अगर इस क्षेत्र में किसी बेरोजगार ने चाय आदि का फड़-खोखा रख लिया या पी.सी.ओ. खोल लिया तो उसे भी पुलिसिया दमन के साथ उजाड़ दिया जाता है।

तो यह है सच्चाई, जिसे झूठ में बदलने की नापाक कोशिश पूंजीपतियों के अखबार और उसके भाड़े के पत्रकार करते रहते हैं।

– अमर सिंह
रुद्रपुर (ऊधम सिंह नगर)

बिगुल के पाठक साथियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'बिगुल' के पिछले सात वर्षों का सफर तरह-तरह की कठिनाइयों-चुनौतियों से जूझते गुज़रा है। इस दौरान अनेक नये हमसफ़र हमारी टीम से जुड़े हैं और पाठक-साथियों का दायरा भी काफी बढ़ा है। कहने की जरूरत नहीं कि अब तक का कठिन सफर हम अपने हमसफरों और शुभचिन्तकों के संग-साथ के दम पर ही पूरा कर सके हैं। हालात संकेत दे रहे हैं कि आगे का सफ़र और अधिक कठिन और चुनौती भरा ही नहीं बल्कि जोखिमभरा भी होगा। हमें विश्वास है कि हम अपने दृढ़संकल्प और हमसफ़र दोस्तों की एकजुटता के दम पर आगे ही बढ़ते रहेंगे।

'बिगुल' अपने पुरअसर तेवर और अपने विशिष्ट जुझारू अन्दाज़ के साथ आपके पास नियमित पहुँचता रहे, इसके लिए अख़बार के आर्थिक पहलू को और अधिक पुख़्ता बनाना जरूरी है। जाहिर है कि यह अपने संगी-साथियों और शुभचिन्तकों की मदद के बिना मुमकिन नहीं। हमारी आपसे पुरज़ोर अपील है कि :

- बिगुल के स्थायी कोष के लिए अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजें।
- जिन साथियों की सदस्यता समाप्त हो चुकी है वे यथाशीघ्र नवीनीकरण करा लें।
- बिगुल के नये सदस्य बनायें।
- बिगुल के वितरण को और व्यापक बनाने में सहयोग करें।
- कुछ वितरक साथियों के पास बिगुल के कई अंकों की राशि बकाया है। इसे यथाशीघ्र भेजकर बिगुल नियमित प्राप्त करना सुनिश्चित कर लें।

सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। बैंक ड्राफ्ट 'बिगुल' के नाम से भेजें।

–सम्पादक

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित नयी पुस्तकें

1. भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़ 175.00
2. शहीदेआज़म की जेल नोटबुक – भगतसिंह 65.00
3. विचारों की सान पर – भगतसिंह 25.00
4. क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास – शिव वर्मा 10.00
5. भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति – विपन चन्द्र 10.00
6. अमर शहीद सरदार भगतसिंह – जितेन्द्रनाथ सान्याल 70.00
7. यश की धरोहर – भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मलकापुरकर, शिव वर्मा 30.00
8. भगतसिंह और उनके साथी – अजय घोष, गोपाल ठाकुर 30.00
9. इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह – रविभूषण 10.00
10. भगतसिंह : अनवरत जलती मशाल – राजकुमार राकेश, मनोज शर्मा 10.00
11. साहित्य और कला – मार्क्स-एंगेल्स 150.00
12. फ्रांस में वर्गसंघर्ष – कार्ल मार्क्स 40.00
13. फ्रांस में गृहयुद्ध – कार्ल मार्क्स 20.00
14. लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर – कार्ल मार्क्स 35.00
15. उजरती श्रम और पूँजी – कार्ल मार्क्स 10.00
16. मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा – कार्ल मार्क्स 15.00
17. गोथा कार्यक्रम की आलोचना – कार्ल मार्क्स 10.00
18. लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त – फ्रेडरिक एंगेल्स 15.00
19. जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति – फ्रेडरिक एंगेल्स 30.00
20. पार्टी कार्य के बारे में – लेनिन 15.00
21. एक क़दम आगे दो क़दम पीछे – लेनिन 60.00
22. जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो रणकौशल – लेनिन 25.00
23. लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने – लीदिया फ़ोतियेवा 50.00
24. मार्क्सवाद क्या है – एमिल बर्न्स 20.00
25. कम्युनिज़्म क्या है – आर.डब्ल्यू. रॉबसन – 5.00
26. पार्टी और दर्शन – मॉरिस कॉनफोर्थ – 5.00
27. तुम्हारी क्षय – राहुल सांकृत्यायन 15.00
28. दिमाग़ी गुलामी – राहुल सांकृत्यायन 15.00
29. वैज्ञानिक भौतिकवाद – राहुल सांकृत्यायन 50.00
30. राहुल निबन्धावली – राहुल सांकृत्यायन 50.00
31. स्तालिन : जीवनी – राहुल सांकृत्यायन 75.00
32. चुनी हुई रचनाएँ – गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
33. सलाखों के पीछे से – गणेशशंकर विद्यार्थी 30.00
34. ईश्वर का बहिष्कार – राधामोहन गोकुलजी 15.00
35. लौकिक मार्ग – राधामोहन गोकुलजी 15.00
36. धर्म का ढकोसला – राधामोहन गोकुलजी 15.00
37. स्त्रियों की स्वाधीनता – राधामोहन गोकुलजी 15.00
38. छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें 10.00
39. फाँसी के तख़्ते से – जूलियस फ़्यूचिक 30.00
40. पाप और विज्ञान – डायसन कार्टर 60.00
41. सांपेक्षिकता सिद्धान्त क्या है? – लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर 25.00

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूलाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनवादों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 289-सी, श्रमिक कुंज, सेक्टर-66, नोएडा
ईमेल : bigul@rediffmail.com
मूल्य: एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, बाघम्बरी हाउसिंग स्कीम, अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (टेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

यज्ञ करो! चोरों, बकायादारों की बुद्धि खोलो!

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। जी हाँ, अब आपको कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान की शरण में जाइए सब बिगड़े काम बन जायेंगे। अब आप पूछेंगे कि आधुनिक वैज्ञानिक और सुपर कम्प्यूटर के युग में यह कैसी बहकी-बहकी बात है? पड़ गये ना चक्कर में! बाजार और मुनाफे की दुनिया में ऐसा ही होता है! उत्तरांचल सरकार भी तो यही प्रेरणा दे रही है। सूबे का बिजली महकमा बकाया वसूली के लिए ईश्वर की शरण में जा चुका है।

क्या इस युग में भी अन्तरिक्ष में रॉकेट छोड़ने से पहले शुभ मुहूर्त में नारियल नहीं तोड़ा जाता है या फिर कम्प्यूटर से कुण्डली नहीं तैयार होती है, इंटरनेट वेबसाइट के जरिए कम्प्यूटरीकृत मन्दिर में की बोर्ड के जरिए पूजा-अर्चना नहीं हो रही है अथवा भौतिक विज्ञान का प्रोफेसर चन्द्रग्रहण/सूर्यग्रहण के वक्त अपने घर पर गोबर का लेप नहीं लगाता और गणेशजी को दूध नहीं पिलाता? आधुनिक वैज्ञानिक युग में कूपमण्डूकता और अज्ञानता की ऐसी ही खिचड़ी पकायी जा रही है।

अब देखिये ना, दुनिया के बादशाहों का बादशाह जॉर्ज बुश कहता है कि मेरे सारे अभियान ईश्वर के आदेश से संचालित होते हैं और तो और वह अपने देश में डार्विन के विकासवाद तक को विद्यालयों के कोर्स से हटाने की कवायद कर रहा है। तो फिर उसके छुटभय्ये ऐसा क्यों न करें? इसी राह पर तो कदम बढ़ा रही है उत्तरांचल सरकार!

उत्तरांचल पॉवर कॉरपोरेशन ने बिजली चोरों और बकायेदारों की बुद्धि खोलने के लिए एक नायाब तरीका अख्तियार किया है। वह राजधानी देहरादून में अपनी मकसद की कामयाबी (यानी बिजली चोरी रोकने और बकाया वसूली) के लिए गायत्री महायज्ञ करा रहा है। है ना हैरतअंगेज बात।

तो भइया इनसे प्रेरणा ले लो। लूट, चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि से मुक्ति के लिए ईश्वर की शरण में जाओ, यज्ञ-महायज्ञ कराओ।

लेकिन ठहरो! इससे ईश्वर का द्वन्द्व तो और बढ़ जायेगा। आखिर चढ़ावे की भारी रकम तो चोरों-लुटेरों की जमात से ही आती है! फिर खुदा सुनेगा किसकी? वह तो उन पूंजीपतियों की सुनेगा जो तुम्हारे हकों को मारकर मन्दिर बनवाने या यज्ञ आहुति में खर्च करता है। वह तो बादशाह सलामत जॉर्ज बुश को ही आदेश देगा। उसके कनिष्ठ साझीदारों को दिव्य दृष्टि देगा। आखिर जिसकी लाठी उसकी भैंस। और फिलहाल लाठी है पूँजीवादी सरपरस्तों के पास।

अब देख लो भइया! या तो बैठे रहो ईश्वर भरोसे या फिर लाठी को अपने कब्जे में लाने के लिए उठ खड़े हो।

अभिव्यक्ति पर न्यायपालिका का एक और हमला

बिगुल संवाददाता

तो भइया सम्भल के। देश के सर्वोच्च न्यायालय ने जनता की जुबान पर एक और ताला लगा दिया है। इस बार उसका फरमान आया है कि फ्रांसीसी युद्धपोत क्लीमेंस्यू के मुद्दे पर प्रदर्शन और विरोध या समर्थन में लेख आदि का प्रकाशन प्रथम दृष्टया अदालत की अवमानना माना जायेगा। यह अभिव्यक्ति की आजादी पर नया हमला है।

दरअसल कबाड़ हो चुके फ्रांसीसी युद्धपोत क्लीमेंस्यू को भारत लाकर तोड़ा जाना था। सैकड़ों टन एस्बेस्टस से निर्मित और खतरनाक रासायनिक तत्वों से सज्जित यह युद्धपोत भारत के गरीब मजदूरों के लिए मौत और गम्भीर बीमारियों का सबब बनकर देश के गुजरात तट पर उतरना था। वैसे भी पश्चिम के मुनाफाखोर तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में अपना कूड़ा-कबाड़ भेजने और सस्ती मजूरी और बगैर सुरक्षा गारण्टी के ऐसे काम कराते रहे हैं। भारत ऐसे खतरनाक कामों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। कबाड़ में विस्फोट से मजदूरों की होने वाली मौतें और गुजरात आदि समुद्र तटों पर पश्चिम के कबाड़ व समुद्री जहाजों-पोतों को बेहद खतरनाक परिस्थितियों में तोड़ने से होने वाली गम्भीर बीमारियों और मौतों का सिलसिला लगातार जारी है। 'बिगुल' में इस पर अलग-अलग रिपोर्टें भी प्रकाशित होती रही हैं।

यह अलग बात है कि तमाम विरोध प्रदर्शनों के मद्देनजर फ्रांस सरकार को अपने इस पोत को भारत में उतरने से पहले ही वापस बुलाने के लिए मजबूर होना पड़ा, लेकिन इस पूँजीवादी लुटेरे निजाम में—जहाँ मजदूरों की जान की कोई कीमत नहीं है, मुनाफा और सिर्फ मुनाफा केन्द्र में है - यह सिलसिला एक नहीं दूसरे रूप में ऐसे ही जारी रहेगा।

यहाँ यह गौरतलब है कि देश और दुनिया के पर्यावरणविद् और पूँजीवादी मीडिया ने इसके खिलाफ जो शोर मचाया था वह मुख्यतः इससे पर्यावरण पर होने वाली क्षति पर केन्द्रित था, गरीब मेहनतकशों की जिन्दगी उनके विरोध का केन्द्र बिन्दु नहीं थी। और फिर पूँजीवादी भड़ैतों से यह उम्मीद की भी नहीं जा सकती।

लेकिन यहाँ सवाल दूसरा है। जिस तरीके से सर्वोच्च न्यायालय के दो जजों की खण्डपीठ ने विरोध प्रदर्शन और बहस व लेख प्रकाशन पर रोक लगाने की कुचेष्टा की है, वह आज के दौर में कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। यह आदेश सर्वोच्च न्यायालय के हड़ताल को गैरकानूनी करार देने, धरना-प्रदर्शन आदि पर तरह-तरह से प्रतिबन्ध लगाने आदि की ही अगली कड़ी है।

इस अन्तरिम आदेश ने एक बार फिर इस बात को और पुख्ता किया है कि लम्बे संघर्षों के दौरान आम जनता को जो सीमित अधिकार मिले भी थे, उदारीकरण के इस घोर आम जन विरोधी दौर में उन्हें पूरी तरह छीनने का ही काम चल रहा है। इस काम में व्यवस्था के अन्य अंगों के साथ न्यायपालिका भी खुलकर पाटा चला रही है। निरंकुश तंत्र के हरबा-हथियार को और मुकम्मल कर रही है।

कानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्त्व खो बैठता है। न्याय प्रदान करने के लिए मूल बात यह है कि हर तरह के लाभ या हित का खात्मा होना चाहिए। ज्यों ही कानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यों ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे कानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की दम्भपूर्ण जबरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है। – **भगतसिंह**

आपस की बात

मालिकों के अधिकार

मौजूदा आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियां उस मुकाम पर आ गयी हैं कि यह व्यवस्था अपने घिनौने पंजों को अब और छिपा पाने में असमर्थ हो गयी है। श्रम और पूंजी के शाश्वत संघर्ष के इस दौर में निस्संदेह पूँजी का पलड़ा भारी पड़ रहा है। इस तात्कालिक जीत का नशा हुक्मरानों के सिर पर चढ़ कर बोलने भी लगा है। इसी नशे से उन्मत्त होकर व्यवस्था के सारे स्तम्भ डोलने लगे हैं एकदम बेफिक्री का यही उन्मत्त आलोड़न उनके समूचे ढाँचे को बिखरा देगा।

पूँजीवादी व्यवस्था का सबसे चलता पुर्जा व्यवस्थापिका-सरकार और उसका उत्पीड़क तंत्र पुलिस और सेना, मजदूरों पर अपने क्रूर और जघन्य आक्रमण में कभी कोई संकोच प्रदर्शित नहीं करते थे। किन्तु बीसवीं सदी के संगठित मजदूर संघर्षों-विशेष तौर पर दो महान क्रान्तियों के माध्यम से दस से अधिक देशों में सत्ता पर मजदूरों के दखल से पूँजीपतियों के हौसले की हवा निकल चुकी थी। इस घटना के कई पुरजोर असर पड़े जिससे समूचे समाज के ताने-बाने पर असर पड़ा। सबसे बड़ी बात यह हुई कि मजदूरों के आसन्न आक्रोश में भस्मीभूत होने से भयभीत बुर्जुआ वर्ग कल्याणकारी राज्य व श्रम कल्याण आदि झुनझुने लेकर मजदूर वर्ग की मान मनुहार में जुट गया। दुनिया की तमाम बुर्जुआ तानाशाही वाले देशों जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि में मजदूरों के प्रति सहानुभूति रखने वाली पार्टियाँ सत्तासीन हुईं। इसका सबसे गम्भीर परिणाम यह हुआ कि मजदूरों के वर्गचरित्र में भी एक परिवर्तन हुआ। समूची दुनिया के मजदूर यह समझने में विफल रहे कि ये लक्ष्मी वाहन उगते लाल सूरज की किरणों के आसन्न प्रसार से भयभीत होकर उसे मना रहे हैं न कि वे उनके हितैषी हैं।

इस भूल के कई दारुण नतीजे हुए। पहला संगठित क्षेत्र का मजदूर अब एक उद्यमी और जुझारू वर्ग – जिसका ऐतिहासिक दायित्व पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ना था – के बजाय एक सुविधाजीवी, वेतनभोगी और सदगृहस्थ बन गया जो एक स्वतंत्र वर्ग की जगह पूँजीवाद का लटकन मात्र था। जो कहीं-कहीं तो खुद असंगठित क्षेत्र के मजदूरों का शोषक था।

इसके अलावा राज्य व्यवस्था पर मजदूरों की बढ़ती पकड़ को देखते हुए तमाम निम्न पूँजीवादी लम्पट तत्व मजदूरों की कतारों में भर्ती होकर मजदूर आन्दोलन की ऊर्जा अपने निहित स्वार्थों के लिए प्रयोग करने लगे। कल्याणकारी राज के झुनझुने में तब्दील मजदूर वर्ग ही नहीं, बल्कि मजदूर सत्ता के सिंहासन पर बैठे क्रान्तिकारी सर्वहारा भी अपनी कतारों की रक्षा में गाफिल हो गया।

मजदूरों के चारित्रिक स्खलन के दुष्परिणाम अब सामने आने लगे। लगभग सभी जगह पर मजदूरों की सत्ता उलट दी गयी। एक-आध जगहों पर बाहरी खोल को बचाये रखते हुए प्रतिक्रियावादी मजदूर सत्ता के नाम पर मजदूरों के सीने पर मूँग दल रहे हैं। यह मजदूरों का चारित्रिक पतन ही है जिसकी वजह से भारत में वैचारिकता के धरातल पर मजदूर विरोधी संगठनों के पास भी विशाल संख्या वाले मजदूर संगठन हैं। एक बार मजदूर आन्दोलन की शक्ति छिन्न-भिन्न होने के साथ ही साथ अतीत के अनुभवों से लैस बुर्जुआजी ने मजदूरों पर एक कुशल सुगठित हमला बोल दिया। इस हमले का मुख्य लक्ष्य मजदूरों की शक्ति का मुख्य स्रोत 'श्रम की सामाजिकता' ही था। अब भूमण्डलीकरण, ठेका, आउटसोर्सिंग आदि तमाम तौर-तरीके अपना कर और मजदूरों की अनेकों अनेक श्रेणियाँ बना कर उनकी सहभागिता और सामाजिकता को समाप्त किया गया। तमाम उद्यमों में व्याप्त श्रमिक सरोकारों का सांस्कृतिक और वैचारिक उन्मूलन इस हमले की पहली चोट थी, जिस पर संगठित क्षेत्र के मजदूर विक्षुब्ध होना तो दूर इसे महसूस करने में भी असफल रहे। इसका एक दूसरा परिणाम यह हुआ कि असंगठित क्षेत्र के नाम पर एक ऐसी सुरक्षित श्रम सेना खड़ी होने लगी जो अपनी जीवन परिस्थितियों की वजह से वर्गीय चेतना से भी शून्य थी। सुरक्षित श्रम की सेना ही बुर्जुआजी के हाथ में वह औजार था जिसने संगठित श्रमिकों के संघर्ष के सबसे प्रचण्ड औजार हड़ताल को खुद्दल कर दिया। अब सौदेबाजी से लेकर संघर्ष तक हर जगह पहलकदमी बुर्जुआ सत्ताधारियों के हाथ में है और लुटे पिटे "श्रमवीर" यूँ चौंक कर खड़े हैं मानो कोई बुरा सपना देख लिया हो।

उचित सुअवसर देख कर सत्ता के अन्य अंग भी अपने नाखून पंजे बाहर निकाल कर टूट पड़े हैं। अगर आज गुड़गाँव में मजदूरों की बर्बर पिटाई हो रही है, अगर उस घटना की जाँच के लिए गठित आयोग का दफ्तर मजदूरों की पहुँच से बहुत दूर बना हुआ है तो क्या इसके लिए केवल यह व्यवस्था दोषी है। जी नहीं, श्रमिक भी दोषी है। गुड़गाँव आन्दोलन मजदूरों का स्वतःस्फूर्त आंदोलन नहीं था। इसका आह्वान एक सक्षम और लगभग 'सरकारी' संगठन एटक ने किया था। किन्तु इस बर्बर पिटाई के बाद भी अन्य मजदूर संगठनों को तो जाने दें इस मजदूर संगठन के प्रभुत्व वाली यूनियनों ने न तब कोई कार्रवाई की, न अब कर रही हैं। एक ही राजनैतिक संगठन के मातहत काम करने वाली यूनियनें अपने नियोक्ता निगमों के आकार प्रकार और व्यापार के दम्भ पर मेंढक की तरह फूले रहते हैं अतः उनके मजदूर सरोकार मर ही गये हैं। दरअसल आज बुर्जुआजी तो मारों को ही मार रही है असल हत्यारे तो वे मजदूर संगठन हैं जिन्होंने श्रमिक सरोकारों को मार डाला है।

इधर धराशायी मजदूर आन्दोलन को पीटने के लिए खुल कर आगे आने वाली नयी सूरमा हिन्दुस्तान की न्यायपालिका है। दिनांक 28 जनवरी 2006 को "दि हिन्दू" में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों की श्रृंखला में श्रमिकों की बर्खास्तगी के नित नये तरीके सुझाने में लगा हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार एक कर्मचारी काम के दौरान "सोने", "गाली गलौज की भाषा का प्रयोग करने", अपने उच्चाधिकारी पर "आक्रमण" करने, वरिष्ठ अधिकारियों का "घेराव" करने या काम से लम्बे समय तक गायब रहने के लिए बर्खास्त किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय का यह भी मानना है कि ऐसे सभी मामलों में कर्मचारियों के दुर्व्यवहार के लिए प्रबन्धन द्वारा दी गयी सजा को गैरसमानुपातिक नहीं कहा जा सकता है। अभी एक फैसले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय और आया है—अगर किसी कर्मचारी पर प्रबन्ध तंत्र आपराधिक आरोप लगाता है, और उस मुकदमे की कार्यवाही में कर्मचारी आरोप मुक्त भी हो जाये तब भी कर्मचारी बर्खास्त किया जा सकता है। इस पर सर्वोच्च न्यायालय का तर्क है कि नियोक्ता के पास उस कदाचार को देखने परखने हेतु तथा अनुशासन कायम करने हेतु अतिरिक्त अधिकार और विवेक उपलब्ध हैं। लब्बोलुआब यह कि यदि नियोक्ता चाहे तो कर्मचारियों को उन आरोपों के लिए भी दण्डित कर सकता है जिसके लिए वे न्यायपालिका की निगाह में भी दोषी नहीं हैं।

एक के बाद एक मजदूर विरोधी फैसले की ही कड़ी में सर्वोच्च न्यायालय का एक और हालिया फैसला गौरतलब है। मुंबई उच्च न्यायालय के एक फैसले को रद्द करते हुए उच्चतम न्यायालय की एक पीठ ने फैसला दिया कि किसी भी सरकारी महकमे में अनुबंध पर काम करने वाले कर्मचारी को सरकारी कर्मचारी नहीं माना जा सकता। मामला अनुबंध पर काम करने वाले एक दवा निरीक्षक को नियमित नियुक्ति के लिए आयु सीमा में छूट देने का था। न्यायपालिका के संकेत स्पष्ट हैं। वह मजदूरों को मालिक (आसन्न मालिक) न होने के लिए ही दंडित कर रही है। यहाँ गौरतलब है कि अगर कहीं विश्व में मजदूर सत्ता खड़ी रहती है या मजदूर आंदोलन मजबूत उभार के दौर में है तो मजदूरों के समस्त जनवादी अधिकार सुनिश्चित करना व्यवस्था के सभी खम्भों की मजबूरी बन जाती है। किन्तु स्थिति बदलते ही उत्पीड़ित वर्गों का स्वभावजन्य बड़बोलापन ही उनकी बर्खास्तगी का बायस बन जाता है। मजदूरों के लिए संकेत साफ हैं – इस बर्बर और निरंकुश लुटेरी व्यवस्था से मोह छोड़ो, ट्रेड यूनियन आंदोलन को मठाधीशों और दलालों के चंगुल से मुक्त करके इसे अपनी मुक्ति का धारदार हथियार बनाओ और अपने जुझारू संघर्ष से ध्वस्त करके उत्पादन, राजकाज और समाज के सम्पूर्ण ढाँचे पर अपना नियंत्रण कायम करो।

– **भूपेश कुमार**

बुश-मनमोहन करार : भारतीय-अमेरिकी पूँजी की खतरनाक साँठगाँठ

(पेज 1 से आगे)

रहेंगे। भाजपा वाले भी अपनी बन्द जुबान खोलेंगे और 'राष्ट्रहित' और राष्ट्र की सुरक्षा की अनदेखी करने के बारे में कांग्रेसियों को उलाहना देंगे। अमेरिका से आये कुत्तों (जिन्हें अमेरिकी "ऑफिसर" कहा जाता है) द्वारा महात्मा गाँधी के समाधि स्थल को अपवित्र करने के बारे में भावुक भाषण दिये जायेंगे ... और इस संसदीय नौटंकी के बाद नौकरशाह समझौते की फाइलों को अन्तिम रूप देने में जुट जायेंगे।

तीन दिनों की भारत यात्रा के दौरान जार्ज बुश ने मनमोहन सरकार के साथ विवादास्पद परमाणु समझौते सहित ऊर्जा, कृषि, स्वास्थ्य और अन्य कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में व्यापारिक समझौते किये। ये भारतीय एकाधिकारी पूँजी और अमेरिकी साम्राज्यवादी पूँजी के बीच हुए समझौते हैं। भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में देशी पूँजी अमेरिकी ही नहीं यूरोपीय और जापानी साम्राज्यवादी पूँजी के साथ भी हर सम्भव गँठजोड़ कायम करने के लिए बेताब है। दरअसल, यह देशी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का खतरनाक गँठजोड़ है जिसकी पहले ही काफी महंगी कीमत इस देश की मेहनतकश जनता को चुकानी पड़ रही है। आने वाले दिनों में उसे और भी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। खासकर असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए छँटनी-तालाबन्दी का नया दौर शुरू होगा, कारखाने मजदूरों के लिए भीषण यातनागृह बनते जायेंगे। शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास जैसी बुनियादी सुविधाएँ मेहनतकशों के बहुलांश के लिए पहुँच के बाहर होती जायेंगी। इसके साथ ही समझौते से दक्षिण एशिया में हथियारों की होड़ और तेज होगी। सरकारें हथियारों की खरीदारी के लिए सामाजिक मदों में कटौतियाँ करेंगी जिसका खामियाजा मेहनतकशों को ही उठाना पड़ेगा।

भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका का शासक पूँजीपति वर्ग आज साम्राज्यवादी ताकतों के साथ तरह-तरह के आर्थिक और राजनीतिक गँठजोड़ व समझौते कर रहा है। प्रत्यक्ष राजनीतिक शासन और नियंत्रण वाले उपनिवेशवाद और परोक्ष राजनीतिक शासन और नियंत्रण वाले नवउपनिवेशवाद का दौर आज बीत चुका है। आज दुनिया के पैमाने पर साम्राज्यवादी पूँजी तीसरी दुनिया के देशों पर अपना वर्चस्व मुख्यतः अपनी उत्पादक शक्तियों की श्रेष्ठता के दम पर ही कायम रखे हुए है। ऐसा वह विश्व व्यापार संगठन जैसी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं में बहुपक्षीय समझौतों और अनेक द्विपक्षीय समझौतों के जरिये कर रहा है। जाहिर है कि ये समझौते असमान ही होते हैं, यानी साम्राज्यवादी पूँजी के पक्ष में झुके होते हैं।

पूँजी की दुनिया में बराबरी के रिश्तों के लिए कोई स्थान नहीं होता। पूँजी की हर साझेदारी में अपनी-अपनी हैसियत और औकात के आधार पर ही सबको अपना हिस्सा हासिल होता है। यह बात किसी साम्राज्यवादी देश और तीसरी दुनिया के किसी देश के बीच के समझौते के लिए जितनी सच है उतनी ही दो साम्राज्यवादी देशों के बीच समझौते के लिए भी सच है। ऐसी किसी भी साझेदारी को औपचारिक जामा पहनाने के पहले सम्बन्धित पक्षों के बीच जमकर सौदेबाजी होती है। समझौते में शामिल सभी पक्ष अपनी-अपनी मजबूती और दूसरे की कमजोरियों के आधार पर उस आखिरी सीमा तक सौदेबाजी करते हैं जिसके आगे बात बिगड़नी शुरू हो जाती है।

अगर किसी साम्राज्यवादी ताकत और तीसरी दुनिया के किसी पूँजीवादी देश के बीच समझौते की खासतौर पर बात की जाये तो आज की दुनिया में दोनों पक्षों की अपनी-अपनी जरूरतें और मजबूरियाँ हैं, लिहाजा समझौते की कोई न कोई सूरत निकल ही आती है। कहने की जरूरत नहीं कि साम्राज्यवादी पूँजी साझेदारी को अपने पक्ष में झुकाने के लिए जोर-जबर्दस्ती भी अवश्य ही करती है। राजनीतिक रूप से बाँह भी मरोड़ती है, यहाँ तक कि राजनीतिक ब्लैकमेलिंग से भी बाज नहीं आती और आखिरकार लूट के माल का बड़ा हिस्सा उसे ही हासिल होता है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि तीसरी दुनिया के शासक पूँजीपति वर्ग केवल साम्राज्यवाद की दलाली खाते हैं या महज उनके कमीशन एजेण्ट हैं। वे श्रम की विश्वव्यापी लूट में साम्राज्यवादियों के जूनियर पार्टनर हैं। उन्हें भी अपना हिस्सा हासिल होता है, जाहिरा तौर पर सीनियर पार्टनर के मुकाबले बेहद छोटा हिस्सा ही।

बुश की यात्रा के दौरान भारत और अमेरिका के बीच परमाणु समझौते सहित विभिन्न समझौतों को साम्राज्यवाद के मौजूदा दौर की इन्हीं सच्चाइयों के मद्देनजर देखा जाना चाहिए। परमाणु समझौता भारत ही नहीं अमेरिका की भी जरूरत है। भारत परमाणु ईंधन का एक बड़ा खरीदार बन सकता है, अमेरिकी हुक्मरान इसे जानते हैं। परमाणु ईंधन बेचना उनकी मजबूरी है। इसी मजबूरी के चलते अमेरिकी शासक वर्ग के एक हिस्से और आस्ट्रेलिया जैसे परमाणु ईंधन के सबसे बड़े भण्डार वाले देश की नाराजगी मोल लेकर भी बुश ने भारत से परमाणु समझौता किया जबकि भारत ने परमाणु अप्रसार सन्धि (एन.पी.टी.) पर दस्तखत नहीं किये हैं जो किसी देश को परमाणु ईंधन बेचने की शर्त है। इसके बावजूद बुश ने यह आश्वासन दिया है कि वह अमेरिकी सीनेट और नाभिकीय आपूर्तिकर्ता देशों के समूह (एन.एस.जी) को इस बाबत राजी करने का प्रयास करेगा। बदले में भारत को अपने 22 में से 16 असैनिक परमाणु ठिकानों को अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आई.ए.ई.ए) की निगरानी के लिए खोलने के लिए मंजूरी देनी पड़ी है। इसके अलावा वह ईरान मसले पर आईएईए में यूरोपीय साम्राज्यवादियों के प्रस्ताव के पक्ष में पहले ही वोटिंग कर चुका है। दोनों देशों के बीच सम्पन्न परमाणु समझौते के बारे में अब तक उपलब्ध ब्यौरे की सच्चाई यही है। यह सच है कि समझौते में भारतीय शासक काफी झुके हैं लेकिन ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने पूरी तरह आत्मसमर्पण कर दिया है। अलबत्ता ऊर्जा, कृषि, स्वास्थ्य, वित्त और अन्य क्षेत्रों में जो समझौते हुए हैं उनमें भारतीय शासक वर्ग ज्यादा झुके हैं। इन क्षेत्रों में अमेरिकी उपभोक्ता मालों और सेवाओं के लिए भारतीय बाजार को खुला करने के लिए कौन-कौन से ठोस आश्वासन दिये गये हैं, इसका समूचा ब्यौरा अभी सामने नहीं आया है, लेकिन इतना स्पष्ट है कि अमेरिकी कृषि उत्पादों और अन्य उपभोक्ता मालों के लिए समझौते में काफी दरियादिली दिखायी गयी है और कुछ समयबद्ध वादे किये गये हैं जिनका पता आगे चलेगा। परमाणु समझौते पर मचे हो-हल्ले के बीच ये समझौते, जो ज्यादा खतरनाक हैं, दब गये हैं।

कहा जा सकता है कि बुश-मनमोहन के बीच का ताजा समझौता 18 जुलाई 2005 को वाशिंगटन में हुए समझौते की ही अगली कड़ी है। यह दुनिया के सबसे बड़े दादा की क्षेत्रीय दादा के साथ हुई राजनीतिक सौदेबाजी भी है। यह एक रणनीतिक सौदेबाजी भी है। अमेरिकी हुक्मरान यह अच्छी तरह जानते हैं कि चीन के बढ़ते आर्थिक-सामरिक वर्चस्व पर लगाम कसने के लिए दक्षिण एशिया में भारत से अच्छा साझीदार उन्हें नहीं मिल सकता। पाकिस्तान में जाकर मुशर्रफ को बुश ने यही सन्देश देने की कोशिश भी की। यह कहकर कि दोनों देशों की जरूरतें अलग हैं, दोनों का इतिहास अलग है। बुश ने यह बात मुशर्रफ के इस आग्रह के जवाब में कही कि वह भी भारत जैसा ही समझौता चाहते हैं।

कुल मिलाकर, बुश- मनमोहन समझौता भारतीय शासक पूँजीपति वर्ग और अमेरिकी साम्राज्यवाद के बीच एक खतरनाक साँठगाँठ और गंठजोड़ है। भारतीय जनता के ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों और अकूत कुर्बानियों की पीठ पर चढ़कर 1947 में राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने वाले इस पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय चरित्र नहीं रखता। वह पूरी तरह प्रतिक्रियावादी चरित्र वाला बन चुका है जो साम्राज्यवाद के साथ केवल साँठगाँठ और गँठजोड़ कायम कर, उसका कनिष्ठ साझीदार बनकर विश्व स्तर पर अधिशेष की उगाही में अपने हिस्से के लिए सौदेबाजी ही कर सकता है। चरित्र की यह विशेषता भारत ही नहीं द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सत्तासीन हुए एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के सभी शासक पूँजीपति वर्गों की है। हम कह सकते हैं कि औपनिवेशिक - नवऔपनिवेशिक दौर के राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के नायकों का दौर बीत चुका है। आज की दुनिया में नेहरू-नासिर, टीटो-एंक्रूमा, राबर्ट मुगाबे और नेल्सन मण्डेला ढूँढे नहीं मिलेंगे। इनकी कहानी अब खण्डित नायकत्व और पराभूत राष्ट्रीय गौरव की त्रासद गाथा बन चुकी है।

कहने का मतलब यह है कि हमें इस भ्रम से निर्णायक रूप से उबर जाना चाहिए कि आज पूँजीपति वर्ग के किसी भी हिस्से में कोई राष्ट्रीय चरित्र शेष है और साम्राज्यवाद विरोधी निर्णायक संघर्ष में वह मेहनतकश जनता के साथ आकर खड़ा हो सकता है। अब सर्वहारा वर्ग की अगुवाई में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में केवल मेहनतकश जमातों की लामबन्दी ही की जा सकती है। साम्राज्यवाद विरोधी यह संघर्ष भी देशी पूँजीवाद को मुख्य निशाना बनाकर ही आगे बढ़ सकता है। यानी सर्वहारा वर्ग की अगुवाई में गाँवों और शहरों की अर्द्धसर्वहारा गरीब आबादी और मध्यमवर्गीय जमातें ही गोलबन्द होकर देशी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के गंठजोड़ के खिलाफ निर्णायक संघर्ष आगे बढ़ा सकती हैं। यह संघर्ष नई समाजवादी क्रान्ति के लिए होगा। उत्पादन और समाज के पूरे ढाँचे पर अपना नियंत्रण कायम करने के लिए सर्वहारा वर्ग की अगुवाई में मेहनतकश जनसमुदाय क्रान्तिकारी जनसंघर्षों के जरिये देश की राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने के लिए आगे बढ़ेंगे। देशी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के गंठजोड़ को फैसलाकुन शिकस्त देने का रास्ता केवल यही हो सकता है।

कहने की जरूरत नहीं कि इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए अभी हमारी तैयारियाँ बिलकुल आरम्भिक मंजिलों में हैं। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी इस जनक्रान्ति की अगुवाई करने के लिए सर्वहारा वर्ग के हिरावलों को सर्वप्रथम एक क्रान्तिकारी पार्टी के रूप में खुद को संगठित करना होगा। यानि, सर्वहारा वर्ग की सही-सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण करना आज की सर्वोपरि जरूरत है और हमें अपनी समूची ऊर्जा, रचनात्मकता और शक्ति को इसी दिशा में झोंक देना चाहिए।

अमेरिकी बाजार की सनक

आज अमेरिकी साम्राज्यवाद विश्व समृद्धि की लूट के लिए विश्व के कोने कोने में उन्मादग्रस्त होकर घूम रहा है। विश्व सम्पदा की लूट के लिए उसे जघन्यतम क्रूर कर्मों से भी कोई गुरेज नहीं है। अफगानिस्तान, इराक, लातिन अमेरिका–विश्व में खनिज सम्पदा-सम्पन्न हर कोना अमेरिकी बूटों की धमक और अमेरिकी बंदूकों की हनक से थर्रा रहा है। उसके नौसैनिक पोत सभी समुद्रों की पहरेदारी ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि जासूस और दलाल समूची मानवता की एक-एक धड़कन की चुगली खाते रहते हैं।

उसी विश्वशक्ति की लाचारी है कि वह संसाधनों का रोना रोते हुए तटबंधों की जरूरी मरम्मत भी नहीं करा सकती है। उसके एक महानगर की आबादी एक सामान्य से चक्रवात के बाद भूखों मरने के लिए मजबूर हो गयी थी। सामाजिक विघटन इस हद तक पहुँच गया है कि आबादी का एक हिस्सा जेलों में पड़ा हुआ है और एक हिस्सा बेघर है। हालत यह है कि बेघरबारों के एक पुस्तकालय के इर्दगिर्द डेरा डालने के विरुद्ध नगरपालिका को कार्रवाई करनी पड़ रही है।

आखिर अमेरिकी राज्य घरेलू मोर्चे पर इतना बेबस क्यों है? पूरी दुनिया से लूटी गयी सम्पत्ति आखिर कहाँ जाती है। इसकी थोड़ी सी बानगी तो नोम चोमस्की अपनी किताब 'प्रोफिट ओवर पीपुल' में देते हैं। दरअसल अमेरिकी राजसत्ता समूची समृद्धि को कुछ थैलीशाहों के हाथों में सौंप देने के सारे जतन करती है। इस संगृहित पूँजी से कुछ समृद्धि के टापू निर्मित हो गये हैं। लॉस एंजेल्स के बेवरली हिल्स या ऐसे ही समृद्धि द्वीपों पर अमेरिकी सैनिकों और विश्व जनता के खून से सिक्त धन के सदुपयोग का एक नमूना कुछ इस प्रकार है -

बेवरली हिल्स के रेस्तराओं में अपने धनपशु ग्राहकों की कारें पार्किंग तक पहुँचाने की नयी सेवा शुरू की गयी है। *फीमेल वालेट पार्किंग सर्विस* नामक इस सेवा में बिकनी, मिनीस्कर्ट या अन्य न्यूनतम परिधान पहने हुए अर्द्धनग्न औरतें–संघर्षरत मॉडल और अभिनेत्रियाँ अमेरिकी धनाढ्यों की गाड़ियाँ पार्किंग तक पहुँचायेंगी। यही नहीं सेवा देने वाली कम्पनी का अनुमान है कि इस समय यह बाजार तीन मिलियन अमेरिकी डालर का है। हालाँकि यह एक छोटी सी धनराशि है किन्तु एक बड़े पागलपन को रेखांकित करती है।

यही घृणित मंसूबे–फूहड़ ऐयाशियाँ हैं जिनके लिए बेघर होकर अमेरिकी सैनिक न केवल समूची दुनिया में रक्तपात करते घूम रहे हैं बल्कि हिंसा और तनाव से मानसिक सन्तुलन भी खो रहे हैं।

नयी सदी में नये वेग से परिवर्तन का ज्वार उठेगा!

छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहां से करें?

पढ़िये!

आह्वान कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

एक अंक का मूल्य: 10 रुपये
वार्षिक : 40 रुपये
(डाक व्यय सहित : 48 रुपये)
कार्यालय: बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली।
फोन : 011-55976788
ahwancampustimes@gmail.com

बच्चों को भूत-प्रेत, जादू-टोना और परियों की झूठी दुनिया से बाहर लाये और संवेदनशील, कल्पनाशील और विचारशील बनाये

अनुराग

बाल पत्रिका

सम्पादक:
कमला पाण्डेय/अभिनव
एक अंक का मूल्य : 10 रुपये
सम्पादकीय कार्यालय :
डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226020
फोन: 0522-2786782

लालू का कुख्यात रेल बजट

चोर दरवाजे से डकैती, निजीकरण की ओर कदम

सम्पादकीय डेस्क

तो लालू यादव ने अपना एक और लोकलुभावन, उदारीकृत रेल बजट पेश कर दिया। इस प्रकार उन्होंने बड़ी ही कुशलता से कुख्यात राकेश मोहन समिति की सिफारिश को अमलीजामा पहनाते हुए एक तरफ रेल महकमे को निजीकरण की दिशा में ढकेलने का एक और महत्वपूर्ण कदम उठा लिया, वहीं चोर दरवाजे से जनता की जेब पर भी डकैती डालने में कोई चूक नहीं की। तभी तो पूँजीपति घरानों से लेकर प्रधानमंत्री तक इस बजट पर फूले नहीं समा रहे हैं। यही तो है लालू बाबू की कुशल बाजीगरी–'साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे'।

लालू भाई का दावा है कि जनता पर किराये का बोझ नहीं डाला गया है। जबकि दो सौ रेलगाड़ियों को सुपर फास्ट का दर्जा देने का सीधा अर्थ है सुपर फास्ट के नाम से परोक्ष रूप से किराये में वृद्धि। महज इसी एक कारनामे से रेल महकमा एक हजार करोड़ रुपये की सालाना कमाई करेगा। इसके अलावा उन्होंने रेलभाड़ों में 'डायनमिक प्राइसिंग पॉलिसी' अपनायी है। यानी माल व यात्री परिवहन दोनों को पीक और नान पीक सीजन, प्रीमियम व नॉन प्रीमियम सेवा और व्यस्त और गैर व्यस्त मार्ग में बाँटकर भाड़ा निर्धारित करने का ऐलान किया है। इसके तहत पीकसीजन, प्रीमियम सर्विस और व्यस्त मार्ग की दर सामान्य से अधिक होगी। यात्री व्यवसाय की यह अवधि साल के दस माह होगी और कुछ एक हिस्सों को छोड़कर ज्यादातर प्रमुख मार्ग व्यस्त मार्ग ही होंगे जहाँ किराया ज्यादा वसूला जायेगा। यही नही स्पंज आयरन, कागज आदि की ढुलाई भी महँगी हो जायेगी।

ट्रेनें तो खूब चल पड़ी हैं, लेकिन देश की गरीब जनता पहले से ही बेहद कम जिन द्वितीय श्रेणी के डिब्बों में सफर करती है, उनकी संख्या बढ़ाने अथवा जनता श्रेणी की ट्रेन चलाने की उन्होंने कोई जहमत मोल नहीं ली है। उल्टे गरीबों का मजाक उड़ाते हुए जिस 'गरीब रथ' को शुरू करने की घोषणा लालू ने की है, उस वातानुकूलित ट्रेन पर तो मध्यम आय वर्ग का बहुलांश तक चढ़ने की हिम्मत नहीं जुटा पायेगा, गरीब की तो हैसियत ही क्या है। इस एअरकण्डीशण्ड 'गरीब रथ' के चलने और एसी किरायों में कटौती आदि से उच्च आय वर्ग को (यानी धनिकों को) तो लाभ पहुँचेगा ही, मध्यम वर्ग के एक छोटे हिस्से की भी एसी में चलने की लालसा पूरी होगी। सच्चाई यह है कि ज्यादातर घोषित सुविधाओं का वास्तविक लाभ धनाढ्यों-नवधनाढ्यों को ही मिलेगा। आम जनता के लिए यात्रा पहले जैसी या उससे और ज्यादा बदतर और खर्चीली ही होगी।

लालू की मक्कारी भरी एक और घोषणा पर गौर फरमाते हैं। उन्होंने किसानों और दूधियों के किराये में पचास फीसदी रियायत देने का ऐलान किया है, लेकिन इसमें एक शर्त जुड़ी है - यह सुविधा उसे मिलेगी जो राष्ट्रीय स्तर के किसी संस्थान में प्रशिक्षण के लिए जायेगा।

लेकिन इस रेल बजट का जो एक दूसरा अहम पहलू है वह है गुपचुप तरीके से कुख्यात राकेश मोहन समिति की सिफारिशों को लागू करना। जिसका मतलब है रेलवे को निजीकरण की दिशा में क्रमशः ढकेलना, छँटनी, नयी भर्ती पर रोक, मजदूरों-कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाना आदि।

इस बजट के माध्यम से निजी व सरकारी क्षेत्र की भागीदारी के नाम पर रेलवे की कई सेवाओं का निजीकरण किया जा रहा है। रेल ट्रेवल सर्विस एजेण्टों के माध्यम से टिकट बिक्री को बढ़ावा, अनारक्षित टिकट के लिए जनसाधारण टिकट बुकिंग योजना की शुरुआत, प्रीपेड यूटीएस काउण्टर, ग्रामीण टिकट बुकिंग सेवा आदि तथा कैटरिंग, ब्रेडरोल ट्रेन व टायलेट की साफ सफाई में ठेकेदारी, स्टेशनों की सुविधाओं को अपग्रेड करने के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी जैसे ढेरों काम निजी हाथों में सौंपने की घोषणा रेलवे को निजीकरण की दिशा में ढकेलने की पहले की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अगला कदम है।

लालू भाई रेलवे में तीन लाख खाली पदों की बात तो स्वीकार करते हैं, लेकिन उसे भरे जाने की कोई मंशा भी जाहिर नहीं करते हैं। उल्टे 55 नयी गाड़ियों को चलाने व 37 गाड़ियों का सेवा विस्तार व कई कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने की तो उन्होंने घोषणा की लेकिन उन्हीं सीमित रेलकर्मियों के दम पर। यानी इन कर्मियों पर और ज्यादा लोड बढ़ाकर। हकीकत यह है कि किसी समय 21 लाख रेलकर्मियों वाले इस महकमे में आज 10 लाख रेलकर्मी रह गये हैं, जबकि काम का बोझ कई गुना बढ़ गया है। पिछले 15 वर्षों के दौरान भारी संख्या में रेलकर्मी कार्यमुक्त हुए हैं, लेकिन भर्ती नाम मात्र की हुई है। अभी भी रेल कर्मियों की ज्यादा संख्या का ही रोना रोया जा रहा है।

बजट घोषणा में लालू बेरोजगारों पर भी खूब "मेहरबान" नजर आये और जनसाधारण टिकट बुकिंग योजना तथा ग्रामीण टिकिट बुकिंग सेवा के लिए बेरोजगारों को एजेंसी देने की घोषणा की। ये एजेंसियां किन 'बेरोजगारों' को मिलेंगी, कहने की जरूरत नहीं है। अगर सच्चे दिल से बेरोजगारों पर मेहरबान ही होते लालू यादव तो महकमे में इनकी भर्ती के रास्ते खोल देते। खाली पदों को भरते। स्वचालित टिकिट वेंडिंग मशीनें लगाने की जगह रोजगार के और ज्यादा अवसर उपलब्ध कराते, नयी गाड़ियों की शुरूआत के साथ ड्राइवर, टी.टी.ई, गार्ड, टेक्निकल व आर्टीजन सिग्नल आदि ढेरों नये रोजगार के अवसर उपलब्ध कराते।

कुल मिलाकर, आम जनविरोधी नीतियाँ लागू करने के इस उदारीकरण के दौर में एक सफल खिलाड़ी ठीक वैसा ही बजट पेश कर सकता है, जैसा कि लालू यादव ने किया। यानी हलाल करो, लेकिन मीठी छुरी से।

मुख्यमंत्री जी आपका प्रजातंत्र तो लूटतंत्र ह

कुमायूँ रिपोर्टर

नाम–नारायण दत्त तिवारी। कहलाते हैं–विकास पुरुष। पूँजीपतियों के अच्छे सेवक हैं। उत्तर प्रदेश के कई बार मुख्यमंत्री रहे। किस्मत ने साथ नहीं दिया था और प्रधानमंत्री बनते-बनते रह गये। पिछले चार वर्षों से उत्तरांचल शासन के मुख्यमंत्री हैं। उसी उत्तरांचल के जिसे अलग राज्य बनाये जाने के विरोधी थे और उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन के दौरान यह तक कह डाला था कि राज्य बनेगा तो मेरी लाश पर।

तो सूबे का प्रधान बनने के बाद से तिवारी जी पूँजीपतियों की सेवा में पूरी तन्मयता से लग गये हैं। अगर यहाँ का मजदूर अपनी जायज हक की बात उठाता है तो इनका एक सूत्र वाक्य है – 'मैं यहाँ कारखाने लगवा रहा हूँ और तुम लोग आन्दोलन करके इन्हें भगाना चाहते हो!' यह सच है कि अतीत में यहाँ खूब कारखाने लगे और भागे भी, लेकिन मजदूरों की वजह से नहीं, बल्कि मिली हुई सरकारी सब्सिडियों, सहूलियतें और टैक्सों की रियायतें हड़पने, मजदूरों और सम्पदा को चूसने-निचोड़ने के बाद पूँजीपति स्वतः भागते रहे हैं। श्रम कानून तो महज कागजों की शोभा पाते रहे हैं। आन्दोलनों को कुचलने के लिए इनकी पुलिस एकदम मुस्तैद रहती है।

मुख्यमंत्री बनने के बाद तिवारी जी एक बार फिर देश व दुनिया के पूँजीवादी लुटेरों को जुटा रहे हैं। भारी सब्सिडी, सहूलियतों और औने-पौने दाम पर जमीनें उपलब्ध कराकर रुद्रपुर-पन्तनगर, सितारगंज, काशीपुर, हरिद्वार, कोटद्वार में सिडकुल के तहत उद्योगों का जाल बिछा रहे हैं। तिवारी जी का पूरा समय इसी क्षेत्र में खर्च होता है। पर्वतीय राज्य होने के बावजूद पहाड़ों की ओर वे भूले से भी रुख नहीं करते। हाँ एक बात जरूर है कि श्रम कानूनों का और नियमित रोजगार का यहाँ कोई नामलेवा भी नहीं है। हर तरफ ठेकेदारी का ही बोलबाला है। सितारगंज और कोटद्वार को तो विशेष आर्थिक क्षेत्र घोषित किया जा चुका है। हर तरफ पूँजीपतियों और ठेकेदारों की ही चाँदी है। और मजदूर डेढ़ हजार से ढाई हजार रुपये पर 12-12 घण्टे खटने के लिए अभिशप्त है।

तो बात हो रही थी विकास पुरुष एन.डी.तिवारी की। पिछले दिनों रुद्रपुर सिडकुल में एक कारखाने के शिलान्यास के अवसर पर वहाँ मौजूद पूँजीपतियों-मैनेजरों-अधिकारियों के बीच विद्वतापूर्ण ढँग से उन्होंने भाषण दिया। (ऐसा वे आये दिन करते हैं)। उन्होंने कहा कि प्रजातांत्रिक शासन पद्धति का पालन करते हुए विकास के मार्ग पर आगे बढ़ना होगा। चीन जैसे गैर प्रजातांत्रिक देश में रक्तवादी माओवाद को विकास में बदल दिया गया है।

ठीक ही फरमाया है इस विद्वान पण्डित ने। विकास के दो मॉडल हैं। आज का चीन निश्चित रूप से पूँजीवादी विकास का राही है। माओ के नेतृत्व में, एक समय अफीमचियों का देश रहे चीन ने विकास की वह मंजिल प्राप्त कर ली थी जब वहां न केवल वेश्यावृत्ति, भुखमरी जैसी सामाजिक बीमारियों पर नियंत्रण कायम हो गया था, अपितु बेरोजगारी का आँकड़ा शून्य के स्तर तक पहुँच गया था। और आज खुले बाजार की अर्थव्यवस्था वाले चीन में वहाँ के राष्ट्रीय विकास और सुधार आयोग के अनुसार इस साल चीन को बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ सकता है। बेरोजगारी लगातार बढ़ती जा रही है। चीन के शहरी क्षेत्रों के श्रम बाजार में नये लोगों के लिए दो करोड़ पचास लाख रोजगार की आवश्यकता है और वहां महज एक करोड़ दस लाख रोजगार के ही अवसर पैदा होंगे। यही नहीं, आयोग का मानना है कि आने वाले तीन वर्षों में लगभग 86 लाख लोगों की नौकरी खत्म हो जायेगी।

यह तो महज एक उदाहरण है पण्डित जी। अब जरा आप अपने प्रजातंत्र के दामन में भी तो झाँककर देखिये। अपने सूबे की ही बात लीजिए। इस छोटे राज्य में शिक्षित बेरोजगारों की क्या स्थिति है! अभी हालिया वक्त में शिक्षा विभाग के चतुर्थ श्रेणी के 1500 पदों के लिए एक लाख, बी.टी.सी. के 650 पदों के लिए 1.12 लाख, एल.टी. के 2000 पदों के लिए 40 हजार, पुलिस सिपाही के 2800 पदों के लिए 60 हजार और लोकसेवा राजपत्रित के लिए 92 हजार लोगों ने आवेदन किया है। यह भी तब जबकि सरकारी नौकरियाँ उत्तराखण्ड के मूल निवासियों के लिए आरक्षित हैं। सिडकुल में ठेकेदारों का चक्कर लगा रहे लाखों बेरोजगारों की फौज हो या सरकारी नौकरियों के लिए चप्पल घिस रहे बेरोजगारों की फौज, यही तो आपके सुनहरे विकास का जीता जागता उदाहरण है।

और जहां तक रही आपके प्रजातन्त्र की बात, तो आजादी के 58 साल का इतिहास चीख-चीख कर एक ही बात साबित कर रहा है–यह जनतंत्र नहीं धनतंत्र है–आम जनता के लिए लूटतंत्र और चोरों, डकैतों, लुटेरों बटमारों, पाकेटमारों का प्रजातंत्र है।

बोलते आँकड़े... चीखती सच्चाइयाँ...

जनप्रतिनिधियों की ऐयाशी, जनता की बर्बादी

● दुनिया के सबसे बड़े 'लोकतंत्र' के जनप्रतिनिधियों (सांसदों) ने आजादी के 58 सालों के दौरान अपने वेतन और भत्तों में 35 बार बढ़ोत्तरी की है। लगातार बजट घाटे का रोना रोते हुए और जनता पर टैक्सों का बोझ लादते हुए ये जनप्रतिनिधि अपनी सुविधाओं में भारी बढ़ोत्तरी करते रहते हैं। रिश्वतखोरी दलाली जैसी करोड़ों की काली कमाई अलग से।

● के.पी. सिंह देव कमेटी की सिफारिश के बाद एक सांसद को इस समय 12 हजार रुपये प्रतिमाह वेतन, 10 हजार रुपये प्रतिमाह संसदीय क्षेत्र भत्ता, 14 हजार रुपये प्रतिमाह कार्यालय भत्ता, 13 हजार पाँच सौ रुपये प्रतिमाह संसदीय क्षेत्र भत्ता मिलता है। इसके अलावा दिल्ली के पाँश इलाके में शानदार आवास, संसदीय क्षेत्र दौरे के लिए आठ रुपये प्रतिकिलोमीटर की दर से संसदीय भत्ता, सालाना एक लाख 20 हजार मुफ्त टेलीफोन कॉल की सुविधा, सालाना 50 हजार यूनिट बिजली मुफ्त मिलती है। यही नहीं ये अपनी पत्नी, पति या किसी भी एक व्यक्ति के साथ देश के किसी भी हिस्से में वातानुकूलित श्रेणी में मुफ्त रेल यात्रा कर सकते हैं, साथ ही सालभर में इन्हें हवाई जहाज के 32 टिकट मुफ्त मिलते हैं। वे लैपटॉप कम्प्यूटर (पॉम टाप कम्प्यूटर भी) और प्रिंटर तथा सेलफोन के भी अधिकारी हैं। विशेषाधिकार के तहत एक निश्चित संख्या में टेलीफोन और एल.पी.जी. कनेक्शन बाँटने का उन्हें हक हासिल है। राजधानी और अपने संसदीय क्षेत्र दोनों जगह कार्यालय व्यवस्था की पूरी सुविधा मिलती है। सरकारी खर्च पर सुरक्षा की व्यवस्था और ऊपर से सांसद विकास निधि के तहत सालाना दो करोड़ रुपये का तोहफा अलग से। विशिष्ट-अतिविशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा पर होने वाले खर्च का बजट हर साल बढ़ता जा रहा है। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल पर खर्च होने वाले 190.43 करोड़ रुपये में से 60 फीसदी राशि विशेष सुरक्षा समूह (एस.पी.जी.) पर खर्च होती है। बीते वित्तीय वर्ष में केवल प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी और पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी व इन सबके परिवार के सदस्यों की एस.पी.जी. सुरक्षा पर 104.19 करोड़ रुपये खर्च हुए। राष्ट्रपति, नेता प्रतिपक्ष सहित अन्य मंत्रियों पर सुरक्षा खर्च अलग से।

● प्रधानमंत्री के दफ्तर और राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए गठित राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के वेतन, यात्रा, कार्यालय पर होने वाला महज एक साल का खर्च 16.32 करोड़ रुपये, मंत्रियों के वेतन पर 1.16 करोड़ रुपये व यात्रा पर 47.50 करोड़ रुपये का खर्च है। विदेशी मेहमानों की सरकारी मेहमाननवाजी और मनोरंजन, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की ओर से राष्ट्रपति भवन में होने वाले सरकारी मनोरंजन, राष्ट्रीय दिवसों पर स्वागत समारोहों आदि पर सालाना खर्च 1.62 करोड़ रुपये है तथा मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार पर होने वाला वार्षिक खर्च 1.67 करोड़ रुपये है। संसद के एक घण्टे की कार्यवाही पर 18 लाख रुपये खर्च हो जाते हैं।

● जनता पर शासन करने के नाम पर और उसकी छाती पर मूँग दलने के लिए होने वाले इस भारी भरकम खर्च को आम जनता पर डकैती डालकर तरह-तरह के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष टैक्स के जरिये वसूला जाता है। ऐसा ही एक ताजा टैक्स है 10.2 प्रतिशत का सर्विस टैक्स जिसे अब 12 प्रतिशत कर दिया गया है।

● दूसरी तरफ मेहनतकशों की एक भारी आबादी असंगठित क्षेत्र में ठेका मजदूरी पर काम करती है जिनकी दिहाड़ी यूँ तो कागजों में भी बहुत नहीं बढ़ी है, लेकिन हकीकत यह घटती ही गयी है। पिछले 10-15 वर्षों के दौरान मिल-कारखानों से लेकर खेतों-खदानों तक में 50-150 रुपये की जो दिहाड़ी मिल जाया करती थी वह लगातार घटते हुए अब 30-100 रुपये की दैनिक दिहाड़ी में बदल गयी है। इसके अलावा 8 घण्टे का कार्य दिवस 12 घण्टे में तब्दील हो चुका है।

आम आदमी की थोथी दुहाई, मध्यम वर्ग को लालीपॉप और मुनाफाखोरों को भरपूर मलाई

(पेज 1 से आगे)

लाख लोगों ने रोजगार के लिए आवेदन किया है। खुद ग्रामीण विकास मंत्रालय का मानना है कि यह संख्या अनुमानित आवेदकों की केवल 40 प्रतिशत है। आने वाले दिनों में यह संख्या दो करोड़ तक पहुँच सकती है। इन दो करोड़ लोगों को 14300 करोड़ रुपये में साल में 100 दिन का रोजगार कैसे मिलेगा, यह वित्त मंत्री महोदय ही बता सकते हैं। एक मोटे अनुमान के मुताबिक इस योजना को सीमित पैमाने पर भी लागू करने के लिए कम से कम 25 से 30 हजार करोड़ रुपये की जरूरत होगी। अन्य योजनाओं का भी यही हाल है।

चिदम्बरम की सारी बजटीय कवायद इस प्रमुख चिन्ता से प्रेरित थी कि बजट घाटा और वित्तीय घाटा को कैसे कम किया जाये और उच्च विकास दर कैसे बनाये रखी जाये। बजट घाटा सकल घरेलू उत्पाद के 2.1 प्रतिशत और वित्तीय घाटा 3.8 प्रतिशत तक ले आने में चिदम्बरम ने जो करिश्मा दिखाया है उस पर तमाम पूँजीपति उनकी पीठ थपथपा रहे हैं। जाहिर है यह करिश्मा तभी हो सकता है जब सरकार सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश पर हाथ रोके और अन्य योजनागत या गैर योजनागत खर्चों में कटौती करे या आय बढ़ाये। चूँकि सेवा कर बढ़ाने और कुछ नयी सेवाओं को करों के दायरे में लाने के अलावा वित्त मंत्री ने करों के ढाँचे के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की है इसलिए यह अपने आप स्पष्ट है कि खर्चों पर लगाम लगाकर घाटा कम करने की कवायद की गयी है। अर्थव्यवस्था की सेहत सुधारने के लिए 'वित्तीय अनुशासन' कायम करने का यही मंत्र आईएमएफ और विश्व बैंक के अर्थशास्त्री लगातार देते रहे हैं। बजट से कुछ समय पहले एक प्रेस कान्फ्रेंस में मनमोहन सिंह ने छठे वेतन आयोग के शीघ्र गठन की घोषणा की थी लेकिन चिदम्बरम ने इस पर चुप्पी साधे रखी। यह भी 'वित्तीय अनुशासन' की देन है। यह 'वित्तीय अनुशासन' निजीकरण प्रक्रिया का ही नाम है और कुछ नहीं।

आम आदमी की दुहाई देते हुए चिदम्बरम ने अपने खास आदमियों की झोली भर दी है। कई वस्तुओं के उत्पाद शुल्क में भारी कटौती की गयी है। इस कटौती का अधिकांश तो उपभोक्ताओं तक पहुँचने के बजाय पूँजीपतियों की ही तिजोरियों में जायेगा। जो चीजें सस्ती होंगी उनका आम आदमी उपयोग ही नहीं करता। छोटी कारें सस्ती होंगी, शीतल पेय की कीमत गिरेगी, 250.750 रुपये मूल्य तक के जूते सस्ते होंगे, लेकिन ये सब तो आम आदमी के रोजमर्रा उपयोग की चीजें हैं नहीं। जाहिर है, आधी सदी के पूँजीवादी विकास के बाद जो एक खाया-पिया अघाया उच्च मध्य वर्ग पैदा हुआ है इस बजट से उसकी बल्ले-बल्ले है। आम आदमी को तो बस नारों और भाषणों में जगह मिलनी है।

देशी-विदेशी पूंजी के लिए बजट में और भी राहतें हैं। अनेक गैर कृषि उत्पादों का आयात शुल्क (सीमा शुल्क) 16 से घटाकर 12.5 प्रतिशत कर दिया गया है। चिदम्बरम ने यह कदम विश्व व्यापार संगठन से किये गये वादों को पूरा करने के लिए उठाया है। जाहिर है इससे देशी पूँजीपतियों को खुशी और गम दोनों का अहसास साथ-साथ हो रहा है। खुशी इस बात की कि पूँजीगत मालों के आयात शुल्कों में कमी से वे अपने उद्योगों का आधुनिकीकरण बेहतर ढंग से कर सकेंगे, उत्पादकता बढ़ा सकेंगे, लेकिन गम इस बात का है कि विदेशी उपभोक्ता मालों की देशी बाजार में आवक से उनके हिस्से में सेंधमारी होगी। बजट के बाद अपनी विशेष मुलाकात में पूँजीपतियों ने चिदम्बरम से अपनी यह चिन्ता प्रकट भी कर दी है और माँग की है कि पूँजीगत और उपभोक्ता मालों के आयात की शुल्क दरों को अलग-अलग किया जाये।

इस बजट में भी बड़ी पूँजी को मुनाफा बटोरने के लिए नये-नये क्षेत्र मुहैया कराने के लिए लघु उद्योगों के लिए आरक्षित सूची से 180 और वस्तुओं को बाहर कर दिया गया है। लघु और मंझोले उद्योगों के आँसू पोंछने के लिए कर्जों आदि में अधिक छूट देने की घोषणाएँ की गयी हैं। पूँजी की दुनिया का यही तो दस्तूर है – बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। कृषि क्षेत्र के लिए भी बजट में जो उपाय सुझाये गये हैं वे पूँजीवादी किसानों के लिए हैं, गरीब किसान और खेत मजदूर चिदम्बरम की आम आदमी की परिभाषा में नहीं आते।

कुल मिलाकर कोई महत्वपूर्ण नीतिगत घोषणाएँ न करते हुए भी चिदम्बरम का यह बजट भूमण्डलीकरण प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाला है। आम आदमी की दुहाई देते हुए पूँजीपतियों के इस मक्कार मुनीम का ध्यान केवल वित्तीय घाटा कम करने और 'विकास दर' बढ़ाने पर है। पूँजीवादी अर्थशास्त्र में अच्छी अर्थव्यवस्था के यही मानक हैं। इन्सान कहीं नहीं होता। चिदम्बरम इस पूँजीवादी फार्मूले पर अमल करने से आगे जा ही नहीं सकते कि विकास दर बढ़ेगी तो बेरोजगारी दूर होगी, जबकि पिछले दस साल में यह फार्मूला पिट चुका है। रोजगार विहीन विकास हो रहा है। विकास दर बढ़ रही है लेकिन रोजगार नहीं । पर चिदम्बरम खुश हैं अपनी उपलब्धियों पर, उनके आका खुश हैं अपने मुनीम की काबिलियत पर, आम आदमी जाये भाड़ में।

आर्थिक सर्वेक्षण ने 'रोजगार विहीन विकास' पर चिन्ता जतायी, वित्त मंत्री विकास दर बढ़ाने की रट लगाते रहे

शायद आपको ठीक-ठीक नहीं मालूम कि सरकार की गरीबी रेखा कहाँ खड़ी है। सरकारी मंत्रालयों-विभागों की फाइलों से निकलकर कभी-कभी पूँजीवादी अखबारों के पन्नों पर दिखायी पड़ जाने वाली इस गरीबी रेखा की झलक शायद कभी आपने देखी हो। हम आपको साफ-साफ दिखाते हैं।

सरकारी परिभाषा के मुताबिक ग्रामीण क्षेत्र में 368 रुपये प्रतिमाह से कम पाने वाले परिवार को गरीबी रेखा से नीचे माना जायेगा। सरकार द्वारा तय यह गरीबी रेखा केवल भोजन ऊर्जा (कैलोरी) पर आधारित है। इस सरकारी पैमाने के अनुसार गरीबी और भुखमरी एक ही है। अगर कोई परिवार किसी तरह दो जून का खाना खाकर जिन्दा रह लेता है, भुखमरी का शिकार नहीं होता तो सरकार मान लेती है कि वह गरीबी रेखा से ऊपर उठ गया है। इस पैमाने के आधार पर देश की कुल आबादी में से केवल 23.6 प्रतिशत ही गरीबी रेखा के नीचे आते हैं।

पिछले दिनों एक गैर सरकारी संस्था 'सेण्टर फॉर पॉलिसी आल्टरनेटिव्स' ने सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता, न्यूनतम जीवन स्तर और अन्य आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं को आधार बनाकर गरीबी रेखा को नये सिरे से परिभाषित कर सरकार को सुझाव भेजा है। इस एनजीओ ने 840 रुपये प्रतिमाह से कम आय वाले परिवारों को गरीबी रेखा से नीचे मानने का सुझाव दिया है। यह परिभाषा मान लेने पर देश की कुल 69 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे आ जायेगी।

एनजीओ की नयी परिभाषा के मुताबिक भी यह मानकर चला गया है ऐसे परिवारों के पास रहने के लिए अपना ठिकाना है। स्वास्थ्य सुविधाएँ, शुद्ध पेयजल की उपलब्धता भी इसमें शामिल है। मतलब यह कि इस नयी परिभाषा के अनुसार भी गरीबी रेखा और भुखमरी रेखा में कोई खास फर्क नहीं पड़ता। देश की दो तिहाई से अधिक आबादी किन नारकीय परिस्थितियों में गुजर-बसर कर रही है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इन वंचित-दरिद्र जनों के सामने इस जालिम व्यवस्था को नेस्तनाबूद करने के अलावा क्या दूसरा भी कोई विकल्प है? राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना जैसे झुनझुने कब तक इनको भरमाते रहेंगे?

गरीबी रेखा या भुखमरी रेखा

केन्द्रीय बजट से एक दिन पूर्व संसद में पेश किये गये आर्थिक सर्वेक्षण में इस बात पर चिन्ता जतायी गयी कि पिछले तीन वर्षों से लगातार औसतन 8 प्रतिशत से अधिक विकास दर के बावजूद बेरोजगारी लगातार बढ़ती जा रही है। आर्थिक सर्वेक्षण के मुताबिक, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा 2004 में रोजगार की स्थिति पर किये गये सर्वेक्षण में यह बात सामने आयी है कि ग्रामीण इलाकों में पुरुष बेरोजगारी दर 1993-1994 के 5.6 प्रतिशत की तुलना में बढ़कर 9 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 8.1 प्रतिशत हो गयी है। महिलाओं के मामले में ग्रामीण क्षेत्रों में यह 9.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 11.7 प्रतिशत था। इतना ही नहीं, आर्थिक सर्वेक्षण ने यह भी उजागर किया है कि उच्च विकास दर के बावजूद संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर लगातार घटते गये हैं। ताजा आँकड़ों के मुताबिक 2000 से 2003 के चार वर्षों के बीच संगठित क्षेत्र में लगभग 10 लाख लोगों को रोजगार से हाथ धोना पड़ा है।

आर्थिक सर्वेक्षण द्वारा दिखाये गये इस आइने के बावजूद पी. चिदम्बरम अपने बजट भाषण में विकास दर और बढ़ाने की रट लगाते रहे। रोजगार सृजन के ठोस उपाय करने के बजाय 'रोजगार विहीन विकास' की पटरी पर ही अर्थव्यवस्था की गाड़ी चलाने की हठधर्मिता से चिपके रहे। जिस पूँजीवादी अर्थशास्त्र की शिक्षा में वित्तमंत्री महोदय दीक्षित हुए हैं उसके केन्द्र में मनुष्य और उसकी आवश्यकताएँ नहीं मुनाफा होता है। फिर उन्हें करोड़ों बेकार हाथों की चिन्ता भला क्यों होगी। लेकिन वित्त मंत्री और उनकी जमात को यह गुमान भी नहीं होगा कि करोड़ों बेकार हाथों और बेचैन दिमागों को लम्बे समय तक फुसलाया-भरमाया नहीं जा सकता। वह दिन भी आयेगा जब पूँजीवादी विकास की यह गाड़ी इन्हीं हाथों द्वारा पटरी से उतार दी जायेगी। करोड़ों मेहनतकश लोग अर्थव्यवस्था की कमान अपने हाथों में ले लेंगे और मुनाफे को आदि और अन्त मानने वाले पूँजीवादी अर्थशास्त्र के लिए अजायबघरों में भी जगह न मिलेगी। तब चिदम्बरम जैसे पूँजीपतियों के सेवक या तो नयी व्यवस्था में मेहनतकशों के सेवक बन जायेंगे या फिर बोरिया-बिस्तर लेकर सात समुन्दर पार भाग जायेंगे, क्योंकि परजीवियों और मुफ्तखोरों के लिए उस व्यवस्था में कोई जगह नहीं होगी।

अमेरिकी साजिशों के कारण इराक में भड़कती बेकाबू हिंसा की आग साम्राज्यवादियों को ही निगल जाएगी

(पेज 12 से आगे)

पर प्रतिक्रियावादी हमलों की संख्या में तेजी से इजाफा हुआ है। अलकायदा का मानना है कि समूची शिया आबादी कब्जे का साथ दे रही है। पिछले एक साल में इसके जवाब में बदला निकालने के लिए शिया जंगजुओं की संख्या में तेज इजाफा हुआ है।

अब, ईरान के शिया धर्मराज्य और वाशिंगटन के बीच बढ़ते तनाव की स्थितियों के तहत बुश प्रशासन यह मांग कर रहा है कि इराक के शिया गुट अपनी मिलिशियाओं को विघटित कर दें और सुरक्षा मंत्रलय के ऊपर अपने नियंत्रण को छोड़कर उसे सुन्नी पार्टियों को सौंप दें। ये वही ताकतें हैं जिन्हें वह हाशिये पर फेंकने की कोशिश कर रहा है। शिया संगठनों ने अमेरिका और सुन्नी संगठनों दोनों के ही खिलाफ तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

बढ़ती शत्रुता के इस माहौल में खुले टकराव को जन्म देने वाली घटनाओं का होना कोई हैरत की बात नहीं है। इराक अमेरिका की इच्छा से सर्वथा स्वतंत्र गृह युद्ध की तरफ तेजी से बढ़ रहा है। अगर ऐसा होता है तो वहां पर लेबनान या भूतपूर्व युगोस्लाविया जैसे देशों की सांप्रदायिक लड़ाई के मुकाबले भारी तबाही मचेगी।

गौरतलब है कि इराक पर हमला न तो उसे व्यापक विनाश के हथियारों को प्रयोग में लाने से रोकने के लिए किया गया था और न ही वहां पर। लोकतंत्र की स्थापना करने के लिए। हमले के पीछे जो असल मंशा काम कर रही थी वह थी विश्व के दूसरे सबसे बड़े तेल भंडार पर नियंत्रण कायम करना और इराक में अमेरिका की सैन्य उपस्थिति कायम करना। यह उपस्थिति स्थायी सैनिक अड्डों के रूप में कायम की जानी थी जिससे कि समूचे मध्य-पूर्व पर अमेरिकी पकड़ में इजाफा किया जा सके। इसके अलावा यह मानकर भी चला गया था कि इराक में अमेरिकी साम्राज्यवाद की मौजूदगी से उसे मध्य-पूर्व से आगे मध्य-एशिया तक अपनी शक्ति को विस्तार देने में मदद मिलेगी, जहां पर तेल एवं प्राकृतिक गैस के विशाल भंडार मौजूद हैं।

अमेरिका के राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक उद्देश्य आपस में जुड़े हुए हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद के अपने आर्थिक एवं सैन्य उद्देश्यों का पीछा करना जारी रखने से इराक के राजनीतिक संकट का सहज समाधान असंभव हो गया है। इराक जैसे प्रतिरक्षा विहीन देश की सैनिक तबाही के पीछे अमेरिका का एक और उद्देश्य यह था यूरोपीय शक्तियों से लेकर चीन तक के सभी संभावित प्रतिद्वंद्वियों को चेतावनी दे दी जाए कि देख लो अमेरिकी हितों को चुनौती देने का हश्र क्या होता है।

इराक में बुरी तरह फंसने के बावजूद अमेरिका अब ईरान को धमकियां दे रहा है और ईरान पर अमेरिकी हमले की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन यह भी तय है कि अगर वह ऐसा करेगा तो उसका हश्र वियतनाम से भी कई गुना बुरा होगा और पूरे अरब जगत में ऐसी आग भड़क उठेगी जो अमेरिकी हितों को जलाकर खाक कर डालेगी।

– कामता प्रसाद

इराक में अमेरिकी युद्ध-अपराधों के एक प्रत्यक्षदर्शी का लोमहर्षक बयान

(दहर जमाइल सम्मानित अमेरिकी पत्रकार हैं जो फालुजा पर अमेरिकी हमलों के समय वहाँ मौजूद थे। 'रिवोल्यूशन' साप्ताहिक को दिये गये एक साक्षात्कार में उन्होंने अमेरिकी युद्ध-अपराधों का लोमहर्षक ब्योरा प्रस्तुत किया था। यह सम्पादित अंश उसी साक्षात्कार पर आधारित है।)

मुख्य कमाण्डर जार्ज बुश के आदेश पर अमेरिकी सेना ने एक सम्प्रभु देश का सम्पूर्ण विनाश कर दिया। यह वह देश था जहाँ 1970 व 1980 के दशक में समूचे मध्य पूर्व में सर्वोत्तम चिकित्सा सुविधएँ मौजूद थीं। दुनिया के किसी भी देश की तुलना में वहाँ प्रति व्यक्ति सबसे अधिक पी.एच.डी. की डिग्री वाले लोग थे। उनके पास बेहद मजबूत बुनियादी ढाँचा मौजूद था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इराक औरतों के अधिकारों का चैम्पियन था लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि समूचे मध्य पूर्व की तुलना में लेबनान के बाद वहाँ स्त्रियाँ सबसे अधिक आजाद थीं। स्त्रियों की शिक्षा और अधिकारों के मामले में इराक काफी आगे था।

अब इराक पर हमले और कब्जे के तीन वर्षों बाद वहाँ का बुनियादी ढाँचा पूरी तरह तहस-नहस हो चुका है। अब वहाँ औरतें कम से कम हिजाब के बिना घरों से बाहर नहीं निकल सकतीं। पचास प्रतिशत लोग बेरोजगार हैं और चिकित्सा-सुविधाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं। ऐम्बुलेंस व स्वास्थ्यकर्मियों को भी अमेरिकी फौजें अपना निशाना बनाती हैं। लोगों को सामूहिक दण्ड देना और स्वास्थ्य सेवाओं को निशाना बनाना अमेरिकी फौजों की प्रमुख कार्यप्रणाली है।

अगर किसी क्षेत्र में अमेरिकी फौजों पर ज्यादा हमले होते हैं तो उनसे निबटने का मानक तरीका है - उस क्षेत्र की बिजली काट देना, स्वास्थ्य सेवाओं को छिन्न-भिन्न कर देना, किसी निश्चित समय में सड़क पर हर चलती-फिरती चीज पर निशाना साधना, कर्फ्यू लगाना आदि। समूचा क्षेत्र यातना-शिविर और एक खुली "बड़ी जेल" बना दिया जाता है। पहले यह फालुजा में शुरू हुआ, अब हदीथा, अल कईम, रमादी, समारा, सानिया आदि सभी जगहों पर यह आम बात हो गयी है।

इराक को नष्ट कर दिया गया है। कब्जे का कोई अन्त नजर नहीं आ रहा। इराक में अमेरिकी सेना का स्थायी अड्डा कायम हो चुका है। अभी फौजों की वापसी की कोई योजना नहीं है, थोड़ी बहुत कटौतीं चाहे हो जाये। अड्डे से मेरा मतलब है स्विमिंग पूल, सिनेमा घर, मैकडोनाल्ड पिज्जा हट, एटीएण्डटी फोन, होम सेण्टर, सीमेण्ट के स्थायी बैरक आदि।

फालुजा की तुलना स्पेनी गृह युद्ध के दौरान गुर्वेर्निका शहर में हुई बमबारी से की जा सकती है। गुर्वेर्निका की तरह फालुजा में भी सामूहिक दण्ड दिया गया और पूरे शहर को जमीन्दोज कर दिया गया। फालुजा को लगभग 70 प्रतिशत नष्ट कर दिया गया है लेकिन फिर भी अमेरिकी कामयाब नहीं हो सके। आज भी लगभग हर रोज फालुजा में नवगठित इराकी सेना व अमेरिकी सिपाहियों पर हमले जारी हैं। लोग अमेरिका से भीषण घृणा करते हैं। अब वे नयी इराकी सेना से भी उतनी ही घृणा करते हैं और अपने शहर में उन्हें बर्दाश्त नहीं कर सकते।

फालुजा तो केवल एक मॉडल है। ऐसा उन सभी शहरों में हो रहा है जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। लोगों को फालुजा से बाहर आने-जाने पर रेटिना स्कैनिंग करानी पड़ती है, फिंगर प्रिण्ट देने होते हैं और उन्हें एक बार कोड दिया जाता है। कर्फ्यू लगातार जारी रहता है। कोई पुनर्निमाण नहीं हो रहा है।

बुश, चेनी, रम्सफेल्ड, कॉलिन पावेल, कोंडालीजा राइस जैसे लोग युद्ध अपराधी हैं और उन पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

...हमारा यह भी विश्वास है कि साम्राज्यवाद एक बड़ी डाकेजनी की साजिश के अलावा कुछ नहीं। साम्राज्यवाद मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम है। साम्राज्यवादी अपने हितों, और लूटने की योजनाओं को पूरा करने के लिए न सिर्फ न्यायालयों एवं कानून को कत्ल करते हैं, बल्कि भंयकर हत्याकाण्ड भी आयोजित करते हैं। अपने शोषण को पूरा करने के लिए जंग-जैसे खौफनाक अपराध भी करते हैं। जहां कहीं लोग उनकी नादिरशाही शोषणकारी मांगों को स्वीकार न करें या चुपचाप उनकी ध्वस्त कर देनेवाली और घृणा योग्य साजिशों को मानने से इनकार कर दें तो वह निरपराधियों का खून बहाने से संकोच नहीं करते। शान्ति-व्यवस्था की आड़ में वे शान्ति-व्यवस्था भंग करते हैं। भगदड़ मचाते हुए लोगों की हत्या, अर्थात हर सम्भव दमन करते हैं। — भगतसिंह

ये किसका लहू है कौन मरा

ऐ रहबरे मुल्को कौम बता
आंखें तो उठा नज़रें तो मिला
कुछ हम भी सुनें हमको भी बता
ये किसका लहू है कौन मरा...

धरती की सुलगती छाती पर
बेचैन शरारे पूछते हैं
हम लोग जिन्हें अपना न सके
वो खून के धारे पूछते हैं
सड़कों की ज़ुबां चिल्लाती है
सागर के किनारे पूछते हैं।
ये किसका लहू है कौन मरा...

ऐ अज़्मे फ़ना देने वालो
पैग़ामे वफ़ा देने वालो
अब आग से क्यूं कतराते हो
मौजों को हवा देने वालो
तूफ़ान से अब क्यूं डरते हो
शोलों को हवा देने वालो
क्या भूल गये अपना नारा।
ये किसका लहू है कौन मरा...

हम ठान चुके हैं अब जी में
हर ज़ालिम से टकरायेंगे
तुम समझौते की आस रखो
हम आगे बढ़ते जायेंगे
हम मंज़िले आज़ादी की कसम
हर मंज़िल पे दोहरायेंगे।
ये किसका लहू है कौन मरा...

• साहिर लुधियानवी

(1946 के नौसेना विद्रोह के समय बंबई में विद्रोही नौसैनिकों और मजदूरों के जुलूस पर हुई बर्बर गोलीबारी के बाद लिखी नज़्म)

घूसखोरी टैक्स : कलम की भड़वागिरी

यह वर्ष का वह समय है जब बुर्जुआजी के पंडे अपने पोथे पंचांग खोलकर मुख्य पंडे भारत के वित्तमंत्री को गणना-मनना सही करने के लिए मुफ्त सलाहें देने लगते हैं। चूंकि पंडों का मुख्य जजमान थैलीशाह वर्ग होता है, अतः वह अपने पंडों को दक्षिणा भी कठिन श्रम के बाद ही देता है।

बुर्जुआजी के ये पंडे तमाम दक्षिणपंथी अर्थशास्त्री, दार्शनिक और विचारक होते हैं। इनका मुख्य दायित्व अपने वैचारिक प्रपंचों द्वारा न केवल थैलीशाहों के सम्पदा आधारों को सुदृढ़ करना है बल्कि आम जनता की कष्टप्रद जिन्दगी को न्यायोचित और सही ठहराना होता है। पंडों के पहले वर्ग में तमाम तकनीकी, प्रबन्धकीय और वित्त व्यावसायिक विद्वत्ता से मंडित किन्तु सामाजिक सरोकारों से भावशून्य कैरियरवादी चिन्तक होते हैं जबकि दूसरे वर्ग के पण्डों में नाना धर्मों के प्रवंचक प्रबन्धनकर्ता, भांति-भांति के सुधारवादी और एनजीओ किस्म के भिखारी शामिल होते हैं।

ऐसे ही एक विद्वान प्राध्यापक वित्तमंत्री को प्रत्यक्ष कर निर्धारण हेतु सलाह देने के दौरान एक नई अवधारणा - घूस टैक्स प्रस्तुत करते हैं : भारतीय प्रबन्धन संस्थान बैंगलोर के प्राध्यापक आर. वैद्यनाथन ने 26 जनवरी 2006 को 'हिन्दू बिजिनेस लाईन' में छपे अपने लेख में एक नयी अवधारणा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार मध्यवर्गीय परिवारों की दशा का निर्धारण युवावस्था सूचकांक (माइजरी इंडेक्स) से किया जा सकता है। इस सूचकांक का निर्धारण मुद्रा स्फीति, टैक्स दर और भ्रष्टाचार दर को जोड़कर किया जा सकता है।

महाशय वैद्यनाथन कहते हैं कि उनके अनौपचारिक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि प्रतिवर्ष 50,000 करोड़ रुपये रिश्वत से जुटाए जाते हैं। अपनी बात को पुष्ट करने हेतु विद्वान प्रोफेसर रिश्वत कर संग्रह करने वाली गतिविधियों की एक सुगठित सी तालिका भी प्रस्तुत करते हैं और साबित करने का प्रयास करते हैं कि इन रिश्वतखोरियों की वजह से मध्यवर्ग की जिन्दगी बर्बाद हो रही है। किन्तु इन महोदय की कहानी में बड़ा झोल है।

इन सात रिश्वत कर गतिविधियों में से एक पहचान स्थापित करने वाले कामों को छोड़ कर बाकी सभी गतिविधियों में घूस व्यापारियों द्वारा ही दी जाती है। हम सभी जानते हैं कि व्यापारी उतने भोलेनाथ नहीं हैं जितना कि प्रोफेसर "भोलेनाथन" उन्हें साबित करना चाहते हैं।

कहने की जरूरत नहीं है कि अपनी जान पर बन आने या फौजदारी मुकदमा कायम होने की अवस्था को छोड़कर व्यापारी अपनी गांठ से चवन्नी भी नहीं देता है। उपरोक्त दोनों मामले में भी अगर व्यापारी आदतन शामिल होता है तब अपने रिश्वत के चैनल बना लेता है। जहाँ कहीं भी रिश्वत के संस्थापित चैनल हैं वहां व्यापारी प्रत्येक रुपये की रिश्वत पर सरकार और जनता के खजाने से कम से कम 100 रुपये से ज्यादा झटक लेता है। अगर आर. वैद्यनाथन के अनुमान सही हैं तो भारत का व्यापारी जनता के खजाने से 50 लाख करोड़ रुपये झटक ले रहे हैं। हालांकि यह अनुमान कुछ ज्यादा हो सकता है कि इस आमदनी का बड़ा हिस्सा रिश्वत अर्थव्यवस्था के संचालन में एक से अधिक बार संचालन कर रहा होता है। इस प्रकार रिश्वत से उगाही गयी रकम का एक हिस्सा भी उसे बचाए रखने के लिए रिश्वत के रूप में देना पड़ता है।

इस प्रकार रिश्वत देकर कमाई करने वाला वर्ग अपनी आमदनी के नाममात्र का भी कर जमा नहीं करता है। यहां तक कि रिश्वत के अलावा भारी-भरकम वेतन पाने वाला वैद्यनाथन का मुख्य अभियुक्त 'सरकारी अधिकारी' भी अपनी उत्कोच सम्पत्ति (अवैध कमाई) पर आयकर नहीं देते हैं। अतः घूस टैक्स का आयकर से किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक चीज वैद्यनाथन महोदय सफाई से गोल कर जाते हैं कि समाज के समस्त धनाढ्य इस प्रकार न केवल उत्कोच के रास्ते आयकर दबा लेते हैं बल्कि इसी उत्कोच की लाठी सरकारी कर्मचारियों की आंखों में घुसेड़ जनता के खजाने से काफी रकम उड़ा भी लेते हैं।

ऐसी परिस्थितियों में यह सरकार नाम का भारी भरकम जुआ किसके गले पड़ा हुआ है। एक पुरानी कहावत है सर का बोझ भी पैरों पर ही जाता है। इस समूचे उत्पीड़क ढांचे को ढोते रहने का श्राप इस देश के मजदूरों और किसानों को ही मिला है। यह निस्संदेह असहनीय बोझ है। अतः उत्पीड़कों को सदैव ही यह भय लगा रहता है कि कहीं उकताए हुए मेहनतकश इस ढांचे को ध्वस्त न कर दें।

अतः इस उत्पीड़क ढाँचे को बचाये रखने की बुर्जुआ रणनीति दो पैरों पर चलती है – एक पैर अकादमिक आतंकवाद का है। इसके तहत वैद्यनाथन सरीखे तेजतर्रार विद्वान अपने जटिल निबंधों और प्रवचनों द्वारा ऐसा माहौल बनाते हैं कि जनता यह मान ले कि सरकार उसका बड़ा दुलार करती है और उनके आराम के लिए धन पशुओं पर भारी कर लगा रही है।

इसी रणनीति का दूसरा पैर धार्मिक संवेदनाहरों और निश्चेतकों (रिलीजियस एनीस्थिसिया) का है। इसके तहत थैलीशाहों द्वारा उत्पन्न कराये गये तरह-तरह के अवसरों–धनपशुओं के विशाल यज्ञ और भंडारे, प्रवचनों को सेठों के अखबारों में दिये जाने वाले बड़े-बड़े कॉलमों और सुर्खियों तथा आजकल तो टी वी चैनलों द्वारा–पालतू धार्मिक तोते आम जनता को उसके दुखों का दोषी ही नहीं सिद्ध करते हैं बल्कि इससे आगे दुखों से मुक्ति के लिए उन्हीं उत्पीड़कों के सामने दयनीय समर्पण का पाठ भी पढ़ाते हैं। ये ढोंगी उपदेशबाज गरीबी का महिमा-मंडन करते हुए खुद धन बटोरते रहते हैं। इस प्रकार आक्रोशशमन तथा मानसिक नियंत्रण द्वारा जनता के ऊपर वह गुलामी लाद दी गयी है जो विश्व की बड़ी से बड़ी सेना के बस की बात नहीं थी।

भूपेश कुमार

भगतसिंह के शहादत दिवस (23 मार्च) के मौके पर

मैं नास्तिक क्यों हूँ

स्वाभाविक है कि अब आप एक और सवाल पूछेंगे—हालाँकि सारतः वह सवाल बचकाना है। आपका सवाल होगाः यदि ईश्वर था ही नहीं तो लोग उसमें विश्वास कैसे करने लगे? मेरा उत्तर स्पष्ट और संक्षिप्त है। लोग जिस तरह भूतों और प्रेतात्माओं में विश्वास करने लगे, उसी तरह ईश्वर में विश्वास करने लगे; फर्क सिर्फ यह है कि ईश्वर में विश्वास सर्वव्यापी है और इसका दर्शन बहुत विकसित है। कुछ परिवर्तनवादी यह मानते हैं कि ईश्वर की उत्पत्ति शोषकों की चालबाजी से हुई, जो एक परमसत्ता के अस्तित्व का प्रचार करके और फिर उससे प्राप्त सत्ता और विशेष अधिकारों का दावा करके लोगों को गुलाम बनाना चाहते थे। मैं यह नहीं मानता कि उन्हीं लोगों ने ईश्वर को पैदा किया, हालाँकि मैं इस मूल बात से सहमत हूँ कि सभी विश्वास, धर्म, मत और इस प्रकार की अन्य संस्थाएँ अन्ततः दमनकारी तथा शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों और वर्गों की समर्थक बनकर ही रहीं। राजा के विरुद्ध विद्रोह करना हर धर्म के मुताबिक पाप है।

ईश्वर की उत्पत्ति के बारे में मेरा अपना विचार यह है कि मनुष्य ने जब अपनी कमियों और कमजोरियों पर विचार करते हुए अपनी सीमाओं का अहसास किया तो मनुष्य को तमाम कठिन परिस्थितियों का साहसपूर्वक सामना करने और तमाम खतरों के साथ वीरतापूर्वक जूझने की प्रेरणा देने वाली तथा सुख-समृद्धि के दिनों में उसे उच्छृंखल हो जाने से रोकने और नियंत्रित करने वाली सत्ता के रूप ईश्वर की कल्पना की। अपने निजी नियमों वाले और पालनहार जैसी उदारता वाले ईश्वर की कल्पना खूब बढ़ा-चढ़ाकर की गयी और वैसा ही उसका विशद चित्रण किया गया। उसके क्रोध और मनमाने नियमों की चर्चा करके उसका इस्तेमाल एक निवारक तत्व के रूप में किया जाता था, ताकि आदमी समाज के लिए खतरा न बन जाये। उसके पालनहार जैसे गुणों की चर्चा करके उससे पिता, माता, बहिन और भाई, मित्र और सहायक का काम लिया जाता था, ताकि आदमी जब भारी मुसीबत में हो और सब लोग धोखा देकर उसका साथ छोड़ गये हो तो वह इस विचार से तसल्ली पा सके कि कम-से-कम एक तो उसका सच्चा मित्र है जो उसकी सहायता करेगा, उसे सहारा देगा, और जो ऐसा सर्वशक्तिमान है कि कुछ भी कर सकता है। आदिम युग के समाज में यह चीज सचमुच बड़ी उपयोगी थी। मुसीबत में पड़े आदमी के लिए ईश्वर का विचार मददगार होता था।

समाज ने जिस प्रकार मूर्तिपूजा और धार्मिक संकीर्णताओं के विरुद्ध संघर्ष किया है, उसी प्रकार उसे इस विश्वास के विरुद्ध भी संघर्ष करना होगा। इसी तरह इनसान जब अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करेगा और यथार्थवादी बनेगा, तो उसे अपनी आस्तिकता को झटक कर फेंक देना पड़ेगा और परिस्थितियाँ चाहे उसे कैसी भी मुसीबत और परेशानी में डाल दें, उनका सामना मर्दानगी के साथ करना पड़ेगा। मेरी हालत ठीक इसी तरह की है।

मेरे दोस्तो, यह अहम्मन्यता नहीं है। यह मेरे सोचने का तरीका है, जिसने मुझे नास्तिक बना दिया है। मैं नहीं जानता कि ईश्वर में विश्वास करने और रोज प्रार्थना करने से—जिसे मैं आदमी का सबसे स्वार्थपूर्ण और घटिया काम समझता हूँ—मुझे राहत मिलती या मेरी हालत और भी बदतर हुई होती। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है, जिन्होंने साहसपूर्वक सारी मुसीबतों का सामना किया। उन्हीं की तरह मैं भी यह कोशिश कर रहा हूँ कि आखिर तक, फाँसी के तख्ते पर भी, मर्द की तरह सिर ऊँचा किये खड़ा रहूँ।

देखिए, इस कोशिश में कहाँ तक कामयाब होता हूँ। एक मित्र ने मुझसे प्रार्थना करने के लिए कहा था। जब उन्हें पता चला कि मैं नास्तिक हूँ, तो उन्होंने कहा, "अपने अन्तिम दिनों में तुम ईश्वर को मानने लगोगे।" मैंने कहा, "नहीं जनाब, यह नहीं होगा। मैं इसे अपने लिए अपमान और पस्तहिम्मती का काम समझूंगा। स्वार्थपूर्ण इरादों से प्रार्थना हरगिज नहीं करूँगा।" पाठको और मित्रो, क्या यह अहम्मन्यता है? अगर है तो मैं इसका हामी हूँ।

(अक्टूबर, 1930)

'मैं नास्तिक क्यों हूँ' का अंश

भगतसिंह से

भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की,
देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की!

यदि जनता की बात करोगे तुम गद्दार कहाओगे
बम्ब-सम्ब को छोड़ो भाषण दिया तो पकड़े जाओगे
निकला है कानून नया चुटकी बजते बँध जाओगे
न्याय अदालत की मत पूछो सीधे मुक्ति पाओगे
कांग्रेस का हुक्म, जरूरत क्या वारण्ट तलाशी की!
देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की!

मत समझो पूजे जाओगे क्योंकि लड़े थे दुश्मन से
रुत ऐसी है अब दिल्ली की आँख लड़ी है लंदन से,
कामनवैल्थ कुटुम्ब देश को खींच रहा है मंतर से
प्रेम विभोर हुए नेतागण, रस बरसा है अम्बर से
योगी हुए वियोगी दुनिया बदल गयी बनवासी की!
देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की!

गढ़वाली जिसने अंग्रेजी शासन में विद्रोह किया
वीर क्रान्ति के दूत, जिन्होंने नहीं जान का मोह किया
अब भी जेलों में सड़ते हैं न्यू माडल आज़ादी है
बैठ गये हैं काले, पर गोरे जुल्मों की गादी है
वही रीत है वही नीत है, गोरे सत्यानासी की!
देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की!

सत्य अहिंसा का शासन है रामराज्य फिर आया है
भेड़-भेड़िये एक घाट हैं, सब ईश्वर की माया है
दुश्मन ही जज अपना, टीपू जैसों का क्या करना है
शांति सुरक्षा की खातिर हर हिम्मतवर से डरना है
पहनेगी हथकड़ी भवानी रानी लक्ष्मी झाँसी की!
देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की!

• शंकर शैलेन्द्र

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित भगतसिंह और क्रान्तिकारियों से सम्बन्धित साहित्य

1. भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़
2. शहीदे-आज़म की जेल नोटबुक
3. विचारों की सान पर (चुने हुए लेख और दस्तावेज़)
4. क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा
5. मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका
6. बम का दर्शन और अदालत में बयान
7. जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो
8. भगतसिंह ने कहा (चुने हुए उद्धरण)
9. संस्मृतियाँ – शिववर्मा
10. क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास – शिववर्मा
11. अमर शहीद तरदार भगतसिंह – जितेन्द्रनाथ सान्याल
12. यश की धरोहर – भगवानदास माहौर
13. भगतसिंह और उनके साथी – अजय घोष / गोपाल ठाकुर
14. भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति – बिपन चन्द्र
15. इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह – रविभूषण
16. भगतसिंह : अनवरत जलती मशाल – राजकुमार राकेश/मनोज़ शर्मा
17. शहीद सुखदेव : नोधरा से फाँसी तक

'चन्द्रशेखर आजाद अमर रहेंगे, हम सबके संकल्पों में'

इलाहाबाद। अपने क्रान्तिकारी पुरखों की याद को बेजान सत्ताना कर्मकाण्ड में बदले जाते देखने से अधिक त्रासद कुछ नहीं। इस त्रासदी के रचयिता आजाद हिन्दुस्तान के सत्ताधारी ही नहीं हैं बल्कि कई वे ताकतें भी हैं जो खुद को भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद का स्वयम्भू वारिस घोषित करती हैं। इन क्रान्तिकारी पुरखों की स्मृति को इस त्रासद नियति के कैदखाने से बाहर निकालने की कोशिश के तहत चन्द्रशेखर आजाद की शहादत की 75वीं वर्षगाँठ (27 फरवरी) पर स्मृति संकल्प यात्रा के अन्तर्गत **दिशा छात्र संगठन** और **नौजवान भारत सभा** के कार्यकर्ताओं ने अल्फ्रेड पार्क में आजाद के शहादत स्थल पर उनकी प्रतिमा के समक्ष हर कुर्बानी देकर उनके अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी जनक्रान्ति के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने की शपथ ली।

दोनों संगठनों के कार्यकर्ताओं ने शपथ ली कि वे क्रान्तिकारी शहीदों के नकली वारिसों द्वारा छात्र-युवा आन्दोलन को सुधारवाद-संसदवाद के दलदल में धँसा देने की कोशिशों का लगातार भण्डाफोड़ करते हुए जनक्रान्ति की मशाल को प्रज्ज्वलित करेंगे जिससे क्रान्ति की स्पिरिट ताजा हो और इन्सानियत की रूह में हरकत पैदा हो।

आजाद के शहादत स्थल पर पहुँचकर शपथ लेने से पूर्व इलाहाबाद के विभिन्न कालोनियों-मुहल्लों में प्रभात फेरियाँ निकाली गयीं। उसके बाद कार्यकर्ता हाथों में नारे लिखी तख्तियाँ लिए जुलूस की शक्ल में शहादत स्थल पर पहुँचे। तख्तियों पर 'चन्द्रशेखर आजाद अमर रहेंगे, हम सबके संकल्पों में', 'आजाद का सपना आज भी अधूरा, छात्र और नौजवान उसे करेंगे पूरा, 'पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का नाश हो', 'इंकलाब जिन्दाबाद' आदि नारे लिखे हुए थे। शपथ के बाद आजाद की प्रतिमा के निकट पार्क में उपस्थित जनसमुदाय के बीच 'हवाई गोले उर्फ देख फकीरे लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच' नामक नुक्कड़ नाटक का मंचन किया गया जिसे दर्शकों ने खूब सराहा। यह व्यंग्य नाटक संसदीय जनतंत्र की पतनशीलता को उजागर करते हुए क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण करने का आह्वान करता है। दोपहर में महालेखा परीक्षक कार्यालय के कर्मचारियों के समक्ष नाटक की एक और प्रस्तुति की गयी।

शाम के समय कर्नलगंज तिराहे पर छात्रों की भारी भीड़ को सम्बोधित करते हुए एक आम सभा भी हुई जिसके बाद मशाल जुलूस निकाला गया। आम सभा में स्मृति संकल्प यात्रा के कार्यकर्त्ताओं ने छात्रों-नौजवानों से पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी जनक्रान्ति के लिए आगे आने का आह्वान किया। वक्ताओं ने सुधारवादी और संसदमार्गी दलों-संगठनों के चंगुल से बाहर निकलकर नये क्रान्तिकारी छात्र-युवा संगठनों के निर्माण के लिए ललकारा।

गोरखपुर। चन्द्रशेखर आजाद के 75वें शहादत दिवस पर स्मृति संकल्प यात्रा के अन्तर्गत दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा ने संयुक्त रूप से एक पखवाड़े तक विभिन्न आयोजन किये। गोरखपुर विश्वविद्यालय के कला संकाय व विधि संकाय और सेण्ट एंड्रयूज महाविद्यालय में भुक्कड़ नाटकों के मंचन के अलावा विश्वविद्यालय परिसर में केन्द्रीय ग्रंथालय के निकट तीन दिवसीय पोस्टर एवं क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

21 फरवरी को विश्वविद्यालय के मुख्य प्रवेश द्वार के सामने स्थित पन्त पार्क में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था : 'क्रान्तिकारियों की विरासत और नौजवानों का रास्ता'। दोनों संगठनों के कार्यकर्ताओं का एक जत्था 27 फरवरी को इलाहाबाद में होने वाले कार्यक्रम में शिरकत करने के लिए भी ट्रेन के रास्ते पहुंचा। ट्रेन के मुसाफिरों के बीच भी कार्यकर्ताओं ने व्यापक प्रचार व पर्चा वितरण किया।

रपट : स्मृति संकल्प यात्रा

संसदीय व्यवस्था की सच्ची क्रान्तिकारी-सर्वहारा आलोचना

लेनिन की रचना 'राज्य और क्रान्ति' के कुछ प्रासंगिक अंश

वर्तमान काल में साम्राज्यवाद और बैंकों के प्रभुत्व ने किसी भी जनवादी जनतंत्र में धन की सर्वशक्तिमत्ता की रक्षा करने तथा उसे जीवन में लागू करने के इन दोनों तरीकों को असाधारण कला में "विकसित कर दिया है।"

"धन-दौलत" की सार्विक सत्ता जनवादी जनतंत्र में **ज्यादा यकीनी** इसलिए भी होती है कि वह राजनीतिक मशीनरी की अलग-अलग कमियों, पूंजीवाद के निकम्मे राजनीतिक खोल पर निर्भर नहीं होती। जनवादी जनतंत्र पूंजीवाद के लिए श्रेष्ठतम संभव राजनीतिक खोल है और इसलिए (पालचीन्स्की, चेर्नोव, त्सेरेतेली और मंडली की मदद से) इस श्रेष्ठतम खोल पर अधिकार करके पूंजी अपनी सत्ता को इतने विश्वसनीय ढंग से, इतने यकीनी तौर से जमा लेती है कि बुर्जुआ-जनवादी जनतंत्र में व्यक्तियों, संस्थाओं या पार्टियों की **कोई भी** अदला-बदली उस सत्ता को **नहीं** हिला सकती।

हमें यह भी नोट करना चाहिए कि एंगेल्स सार्विक मताधिकार को भी पूर्णतम स्पष्टता के साथ बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व का अस्त्र कहते हैं। जर्मन सामाजिक-जनवाद के लम्बे अनुभव को स्पष्ट रूप से ध्यान में रखते हुए वह कहते हैं कि सार्विक मताधिकार "मजदूर वर्ग की परिपक्वता की कसौटी है। वर्तमान राज्य में वह इससे अधिक कुछ **नहीं** है **और न** कभी हो सकता है।"

टुटपुंजिया जनवादी, जैसे कि हमारे समाजवादी-क्रान्तिकारी तथा मेंशेविक और उसी तरह उनके सगे भाई, पश्चिम यूरोप के सभी सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी और अवसरवादी सार्विक मताधिकार से इसी "अधिक" की आशा करते हैं। वे खुद इस गलत विचार को मानते और जनता के दिमाग में भरते हैं कि मानो "**वर्तमान** राज्य में" सार्विक मताधिकार अधिकांश मेहनतकशों की इच्छा को सचमुच प्रगट कर सकता है और जीवन में उसकी तामील सुनिश्चित कर सकता है।

यहां हम इस गलत विचार को केवल इंगित कर सकते हैं, केवल यह बता सकते हैं कि "आधिकारिक" (यानी अवसरवादी) समाजवादी पार्टियों के आन्दोलन और प्रचार में हर कदम पर एंगेल्स के बिलकुल स्पष्ट, सटीक और ठोस बयान को तोड़ा-मरोड़ा जाता है। उस विचार की सारी झुठाइयों पर, जिसको एंगेल्स ने यहां पूर्णतः ठुकरा दिया है, ब्योरेवार प्रकाश हमने "**वर्तमान**" राज्य पर मार्क्स और एंगेल्स के विचारों के और आगे विवरण में डाला है।

एंगेल्स अपनी सबसे लोकप्रिय रचना में अपने विचारों का सामान्य सार निम्न शब्दों में देते हैं :

"अतएव, राज्य अनादि काल से नहीं चला आ रहा है। ऐसे समाज भी हुए हैं, जिन्होंने बिना राज्य के अपना काम चलाया और जिन्हें राज्य और राज्य-सत्ता का कोई ज्ञान न था। आर्थिक विकास की एक निश्चित अवस्था में, जो समाज के वर्गों में विभक्त हो जाने के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई थी, इस विभाजन के कारण राज्य अनिवार्य बन गया। अब हम उत्पादन के विकास की ऐसी अवस्था की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं, जिसमें इन वर्गों का अस्तित्व न केवल अनावश्यक, बल्कि उत्पादन के लिए निश्चित रूप से एक बाधा बन जाता है। वर्गों का उतने ही अवश्यंभावी ढंग से विनाश हो जाएगा, जितने अवश्यंभावी ढंग से उनका जन्म हुआ था। उनके साथ-साथ राज्य भी अनिवार्य रूप से मिट जावेगा। जो समाज उत्पादकों के स्वतंत्र तथा समान सहयोग की बुनियाद पर उत्पादन का संगठन करेगा, वह समाज राज्य की पूरी मशीनरी को उठाकर उस स्थान में रख देगा, जो उस समय उसके लिए सबसे उपयुक्त होगा : यानी वह राज्य को हाथ के चर्खे और कांसे की कुल्हाड़ी के साथ-साथ प्राचीन वस्तुओं के अजायबघर में रख देगा।"

संसदीय व्यवस्था का उन्मूलन

मार्क्स ने लिखा था : "कम्यून संसदीय नहीं, बल्कि एक कार्यशील संगठन था, जो कार्यकारी और विधिकारी, दोनों कार्य साथ-साथ करता था...

"...तीन या छः **साल में एक** बार यह तय करने के बजाय कि **शासक** वर्ग का कौन सदस्य संसद में जनता का प्रतिनिधित्व तथा दमन करेगा (ver- und zertreten), सर्वमताधिकार को अब कम्यूनों में संगठित जनता के उसी प्रकार काम में आना था, जिस प्रकार अपने व्यवसाय के लिए मजदूर, मैनेजर तथा मुनीम तलाश करनेवाले हर एक मालिक के लिए व्यक्तिगत मताधिकार काम में आता है।"[1]

सामाजिक-अन्धराष्ट्रवाद और अवसरवाद के बोलबाले की बदौलत 1871 में की गयी सैंसदीय व्यवस्था की यह उल्लेखनीय आलोचना भी आज मार्क्सवाद के "विस्मृत शब्दों" में शामिल है। पेशेवर मंत्रियों और संसदबाजों ने, सर्वहारा वर्ग के गद्दारों और आज के "कारोबारी" समाजवादियों ने संसदीय व्यवस्था की आलोचना का सारा कार्य अराजकतावादियों के लिए छोड़ दिया है, और इस अद्भुत बुद्धिमत्तापूर्ण आधार पर उन्होंने संसदीय व्यवस्था की **हर प्रकार की** आलोचना को "अराजकतावाद" घोषित किया है!! कोई आश्चर्य नहीं कि शीडेमान, डेविड, लेजियन, सेम्बा, रेनोदिल, हेंडेरसन, वानडरवेल्डे, स्टानिंग, ब्रांटिंग विसोलाती जैसे "समाजवादियों" से क्षुब्ध होकर "उन्नत" संसदीय व्यवस्थावाले देशों का सर्वहारा वर्ग अराजकतावाद-संघाधिपत्यवाद के प्रति अधिकाधिक सहानुभूति दिखलाने लगा है, हालांकि वह अवसरवाद का सगा भाई ही है।

लेकिन मार्क्स के लिए क्रान्तिकारी द्वन्द्ववाद कभी खोखली फैशनेबुल लफ्फाजी, झुनझुना नहीं रहा, जैसा कि प्लेखानोव, काउत्स्की तथा दूसरों ने उसे बना दिया है। मार्क्स जानते थे कि बुर्जुआ संसदीय व्यवस्था के "सूअरबाड़े" तक का इस्तेमाल करने की, खास तौर से जब परिस्थिति प्रत्यक्ष ही क्रान्तिकारी न हो, असमर्थता के कारण अराजकतावाद के साथ किस तरह निर्ममता से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना चाहिए। लेकिन साथ ही वह यह भी जानते थे कि संसदीय व्यवस्था की सच्ची क्रान्तिकारी-सर्वहारा आलोचना किस तरह की जाती है।

केवल संसदीय-सांविधानिक राजतंत्रों में ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक जनवादी जनतंत्रों में भी बुर्जुआ संसदीय व्यवस्था का सच्चा सार कुछ वर्षों में एक बार यह फैसला करना ही है कि शासक वर्ग का कौन सदस्य संसद में जनता का दमन और उत्पीड़न करेगा।

लेकिन अगर हमें राज्य के प्रश्न को लेना है, अगर **इस** क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों की दृष्टि से संसदीय व्यवस्था पर राज्य की एक संस्था के रूप में विचार करना है, तो संसदीय व्यवस्था से निस्तार का रास्ता क्या है? किस तरह उसके बिना काम चलाया जा सकता है?

हमें बार-बार दोहराना चाहिए : कम्यून के अध्ययन पर आधारित मार्क्स की सीखों को इतनी पूरी तरह भुला दिया गया है कि संसदीय व्यवस्था की अराजकतावादी या प्रतिक्रियावादी **आलोचना को छोड़कर** और कोई भी **आलोचना** आज के "सामाजिक-जनवादी" (पढ़िए : समाजवाद के आधुनिक गद्दार) की समझ में बिलकुल नहीं आती।

संसदीय व्यवस्था से निस्तार का रास्ता बेशक प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं और चुनाव के सिद्धान्त को खत्म कर देना नहीं, बल्कि प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं को गपबाजी के अड्डों से बदलकर "कार्यशील" संस्थाएं बना देना है। "कम्यून संसदीय नहीं, बल्कि एक कार्यशील संगठन था, जो कार्यकारी और विधिकारी, दोनों कार्य साथ-साथ करता था।"

"संसदीय नहीं, बल्कि कार्यशील संगठन"—आज के संसदबाजों और सामाजिक-जनवाद के संसदीय "पालतू कुत्तों" के मुँह पर यह भरपूर तमाचा है! अमेरिका से स्विट्जरलैण्ड तक, फ्रांस से इंग्लैण्ड, नार्वे, आदि तक चाहे किसी संसदीय देश को ले लीजिए—इन देशों में "राज्य" के असली काम की तामील पर्दे की ओट में की जाती है और उसे महकमे, दफ्तर और फौजी सदर-मुकाम करते हैं। संसदों को "आम जनता" को बेवकूफ बनाने के विशेष उद्देश्य से बकवास करने के लिए छोड़ दिया जाता है। यह बात इतनी सच्ची है कि रूसी जनतंत्र तक में, जो एक बुर्जुआ-जनवादी जनतंत्र है, संसदीय व्यवस्था की ये सारी बुराईयाँ असली संसद के बनने से पहले ही फौरन जाहिर हो गयीं। सड़ी हुई कूपमण्डूकता के स्कोबेलेव और त्सेरेतेली, चेर्नोव और अवक्सेन्त्येव, आदि जैसे सूरमा सोवियतों तक को अत्यन्त घृणित बुर्जुआ संसदीयता के ढंग से गन्दा करने में सफल हो गए हैं, उन्हें महज गपबाजी के अड्डों में बदल दिया गया है। सोवियतों के अन्दर श्रीमान "समाजवादी" मंत्रीगण गाँवों के भोले-भाले लोगों को लफ्फाजी और प्रस्तावों से ठग रहे हैं। सरकार के अन्दर निरन्तर जोड़-तोड़ चल रही है, जिससे कि एक ओर तो अधिक से अधिक समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेंशेविकों को बारी-बारी से इज्जत और आमदनी की नौकरियों की "दावत" में हिस्सेदार बनाया जा सके और, दूसरी ओर, जनता का "ध्यान भी बँटा रहे।" और तब तक "राज्य" का असली "काम" सरकारी दफ्तर और फौजी सदर-मुकाम "चलाते" हैं!

सत्तारूढ़ "समाजवादी-क्रान्तिकारी" पार्टी के मुखपत्र 'देलो नरोदा'[2] ने अभी हाल में अपने एक सम्पादकीय लेख में ऐसे "भले समाज" के लोगों के लिए, जिसमें "सभी" राजनीतिक अनाचार में जुटे हुए हैं, उपयुक्त अप्रतिम स्पष्टता के साथ यह स्वीकार किया था कि उन मंत्रालयों में भी, जिनके अध्यक्ष "समाजवादी" (खुदा बचाये!) हैं, सारी नौकरशाही मशीनरी वास्तव में पहले ही जैसी बनी हुई है, पुराने ही ढर्रे पर चल रही है और क्रान्तिकारी कार्रवाईयों का "स्वतंत्रतापूर्वक" अन्तर्ध्वंस कर रही है! इस स्वीकारोक्ति के बिना भी क्या सरकार में समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेंशेविकों की शिरकत का तथ्यगत इतिहास ही यह साबित नहीं कर देता? इसमें एकमात्र लाक्षणिक बात यह है कि कैडेट मंत्रियों की संगत में चेर्नोव, रुसानोव, जेन्जीनोव और 'देलो नरोदा' के दूसरे सम्पादकों ने शर्म-लिहाज की तमाम भावना को इस तरह बेच खाया है कि खुलेआम इस बात का ऐलान करने में उन्हें किसी प्रकार की झिझक नहीं होती कि "उनके" मंत्रालयों में सब कुछ पुराने ही ढर्रे पर चल रहा है, जैसे कि यह कोई छोटी-सी बात हो!! गाँव के सीधे-सादे लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए क्रान्तिकारी-जनवादी शब्दावली और पूंजीपतियों का "दिल खुश करने" के लिए नौकरशाही और लालफीताशाही—"ईमानदार" संयुक्त मंत्रिमण्डल का यही **सारतत्व** है।

बुर्जुआ समाज की भ्रष्ट तथा सड़ी-गली संसदीय व्यवस्था की जगह कम्यून ऐसी संस्थाएं कायम करता है, जिनके अन्दर राय देने और बहस करने की स्वतंत्रता पतित होकर प्रवंचना नहीं बनती, क्योंकि संसद-सदस्यों को खुद काम करना पड़ता है, अपने बनाये हुए कानूनों को खुद ही लागू करना पड़ता है, उनके परिणामों की जीवन की कसौटी पर स्वयं परीक्षा करनी पड़ती है और अपने मतदाताओं के प्रति उन्हें प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होना पड़ता है। प्रतिनिधिमूलक संस्थाएँ बरकरार रहती हैं, लेकिन विशेष व्यवस्था के रूप में, कानून बनाने और कानून लागू करने के कामों के बीच विभाजन के रूप में, सदस्यों की विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति के रूप में संसदीय व्यवस्था यहां **नहीं** होती। प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं के बिना जनवाद की, सर्वहारा जनवाद की भी कल्पना हम नहीं कर सकते, लेकिन संसदीय व्यवस्था के बिना जनवाद की कल्पना हम कर सकते हैं और हमें करनी **चाहिए**, अगर बुर्जुआ समाज की आलोचना हमारे लिए कोरा शब्दजाल नहीं है, अगर बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व को उलटने की हमारी इच्छा गम्भीर और सच्ची है, न कि मेंशेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की तरह, शीडेमान, लोजेयन, सेम्बा और वानडरवेल्डे जैसे लोगों की तरह मजदूरों के वोट पकड़ने के लिए "चुनाव" का नारा भर।

[1]लेनिन ने मार्क्स की कृति 'फ्रांस में गृहयुद्ध' के जर्मन संस्करण से उपरोक्त अंश उद्धृत किया है।

[2]'देलो नरोदा' ('जनता का ध्येय')—समाजवादी-क्रान्तिकारियों का दैनिक मुखपत्र, जो मार्च, 1917 से जुलाई, 1918 तक पेत्रोग्राद से निकलता रहा। उसका रुख रक्षावादी तथा समझौतापरस्त था; वह बुर्जुआ अस्थायी सरकार का समर्थन करता था।

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित लेनिन की पुस्तकें

1. क्या करें?	30.00
2. वामपंथी कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज	15.00
3. सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की	15.00
4. जनता के बीच पार्टी का काम	30.00
5. धर्म के बारे में	20.00
6. समाजवाद और युद्ध	10.00
7. साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था	20.00
8. राज्य और क्रान्ति	20.00
9. दूसरे इण्टरनेशनल का पतन	15.00
10. गाँव के गरीबों से	10.00
11. मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद	10.00
12. कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा	10.00
13. पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन	15.00
14. तोल्स्तोय के बारे में	8.00
15. कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा	5.00
16. जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल	25.00
17. एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे	60.00
18. लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने – लीदिया फ़ोतियेवा	50.00

नौसेना विद्रोह के 60 वर्ष पूरे होने के अवसर पर

नाविक विद्रोह और इतिहास का चक्र

सुरेन्द्र कुमार

18 फरवरी 1946 को शुरू हुए रायल इण्डियन नेवी के नौसैनिकों के विद्रोह ने भारत में ब्रिटिश सत्ता की चूलें हिला दी थीं। देशभर में उमड़ते जनान्दोलनों से पहले ही दबाव में आयी ब्रिटिश हुकूमत पर नौसेना विद्रोह ने भयंकर चोट की। पूरे देश की जनता ने इस विद्रोह का जबर्दस्त उत्साह के साथ स्वागत किया और इसके समर्थन में सड़कों पर उतर आयी लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के बुर्जुआ नेताओं ने बहादुर नौसैनिकों को बैरकों में लौट जाने की सलाह देते हुए कहा कि सेना को अनुशासन भंग नहीं करना चाहिए। विद्रोह को कुचल दिया गया लेकिन उसने ब्रिटिश राज के ताबूत में आखिरी कील का काम किया। आजादी के बाद भी काले अंग्रेजों के राज में भारतीय इतिहास के इस गौरवशाली अध्याय पर पर्दा डाला गया और इतिहास की किताबों तक में इसका जिक्र मुश्किल से मिलता है। नौसेना विद्रोह के 60 वर्ष पूरे होने के अवसर पर हम उस विद्रोह के भागीदार और जाने-माने पत्रकार तथा अनुवादक सुरेन्द्र कुमार का लेख 'विगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.

हर विप्लव, क्रान्ति, विद्रोह का विस्फोट कोई आकस्मिक घटना नहीं हुआ करता। साठ वर्ष पूर्व रॉयल इण्यिन नेवी के नौसैनिकों के विद्रोह पर भी यह नियमसंगत सिद्धान्त लागू होता है। जन-असन्तोष से उपजे परिणाम सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही होते हैं और इतिहास इस मसले पर "यदि" और "परन्तु" के लिए कोई गुंजाईश नहीं छोड़ता। 1905 में रूस में जारशाही के विरुद्ध सबसे पहले "पोतेम्किन" युद्धपोत के नाविकों ने विद्रोह का झण्डा फहराया था। उस पर राजशाही विजयी रही परन्तु वह विजय उसके लिए मौत की घण्टी ही सिद्ध हुई और पहले फरवरी 1917 में जारशाही की तख्ता उलटने और फिर पूँजी की सर्वसत्ता के भस्म करने की आधारभूमि सिद्ध हुई। अपने भारत में फरवरी 1946 की नौसैनिक क्रान्ति ने यद्यपि उतने युगान्तरकारी परिवर्तनों की नींव नहीं रखी, परन्तु उसने औपनिवेशिक दासता को शव-पेटिका में अन्तिम संस्कार के लिए श्मशान घाट पर अवश्य पहुँचा दिया था। उसके परिणाम शायद और भी अप्रत्याशित, प्रलयंकारी सिद्ध होते, परन्तु राष्ट्र का नेतृत्व जो विशुद्ध भद्रलोक के हाथों में था, क्रान्तिकारी उथल-पुथल के स्थान पर समझौता, लेन-देन के मार्ग पर अधिक विश्वास करता था। इसीलिए नाविक क्रान्ति की ज्वाला भभकी, बुझ गई और भुला भी दी गयी। यह भी नियति की विडम्बना है। परन्तु इतिहास का चक्र तो घूमता रहता है, देर-सबेर दबे-कुचले, दीन-हीन, वंचित जन इतिहास का सही-सही हिसाब-किताब कर लेते हैं।

इस समय पश्चिमी साम्राज्यवाद अपने देश में साम्प्रदायिक उन्माद के ध्वजवाहक और विश्व पूँजी के देशी दलाल सब मिलकर जनता को संज्ञाहीन बनाने में जुटे हुए हैं। परन्तु यह उनकी हताशा का द्योतक है, शक्ति का नहीं। 1857, बलिया (1942), तेभागा, तेलंगाना, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह का झण्डा फरवरी 1946 में बम्बई, कराची, कलकत्ता, विज़गापट्टम (आज का विशाखापट्टनम), बीच सागर में गतिमान जलपोतों के नाविकों ने अपने हाथों में थामा एक क्षण भी अपने प्राणों का ख्याल किये बिना।

कहते हैं, कोई भी बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। पता नहीं। परन्तु 1946 के नाविक विद्रोह के उस महायज्ञ में एक सहभागी होने के नाते इतना तो दावा कर सकता हूं कि मेरे साथी नौजवानों ने मन, वचन कर्म से अपनी भूमिका निभाई। यदि उस समय की राष्ट्रीय मंच पर आसीन बड़ी और मुख्य शक्तियों ने हमारा साथ दिया होता तो आज का परिदृश्य कुछ और ही होता। वैसे यह भी "यदि" और "परन्तु" का ही विषय है।

हम लोगों को जो जीवन के रंगमंच से अदृश्य नहीं हुए हैं, इतना सन्तोष है कि इतिहास ने हमें जो कार्यभार सौंपा था उसे वहन करने में हम पीछे नहीं रहे। हमारा कार्य देश के अनगिनत शहीदों के प्रति एक भरपूर श्रद्धांजलि थी, भले ही हमारी यात्रा अधूरी रही। वैसे इतिहास चक्र तो घूमता रहता है न वह हमारे साथ शुरू हुआ और न हमारे साथ खत्म होगा। इतिहास के जिस यज्ञ में हम शामिल हुए थे, उसके फल कल की या फिर कल के बाद आने वाले कल की अथवा उसके भी बाद की पीढ़ी को अवश्यंभावी रूप से उपलब्ध होंगे।

नाविक विप्लव की तरतीबवार वृत्तांत की आवश्यकता

इधर मुझे नौसेना के विप्लव के कुछ सहभागियों और इतिहास लेखन से जुड़े लोगों के आलेख पढ़ने को मिले। कुछ संस्मृतियों ने तो उन युगान्तरकारी दिनों की घटनाओं को मन में पुनरुज्जीवित कर दिया। इन पंक्तियों के लेखक को केवल इतना जोड़ना है कि बम्बई समेत जिन-जिन स्थानों में नाविक विदेशी शक्ति से भिड़ने के लिए मैदान में उतरे, उनमें सबसे अधिक प्रचण्ड टक्कर कराची में हुई थी, बम्बई से कहीं अधिक विकराल। उस पर विशद अध्ययन-लेखन अपेक्षित है। इन पंक्तियों के लेखक तो उन तूफ़ानी लहरों को अपनी अच्छी या बुरी आदत के कारण कुछ समय बाद ही भूल गया था। इसका स्मरण सहसा एक दिन गत शताब्दी के 50 के दशक में दिल्ली के पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस में नव-नियुक्त मुद्रण-विशेषज्ञ साथी राव तुलाराम से मुलाकात होते ही "हमारे लीडर" "हमारे लीडर" फिकरे से हुआ। याद दिलाया कि विद्रोह की पूर्वबेला में मैं और मेरे साथी कैसे बैरक-बैरक जाकर साथियों को सिगरेट पिलाते हुए (उनका आशय रिश्वत नहीं था) रणभूमि में उतरने का आह्वान कर रहे थे। यही बात फिर चार-पांच दशक बाद उन्होंने दिल्ली के प्रेस क्लब में दोहरायी। मेरे लिए यह फिर एक तरह असुविधाजनक स्थिति थी।

"मैं" शब्द से सदैव बचने का प्रयास करते हुए भी आज इसलिए इसका उपयोग कर रहा हूं कि अधूरे रह गए "महायज्ञ" को "रोमाण्टिसाइज" करने की आवश्यकता नहीं है। पटेल या नेहरू या गांधी को कोसने से क्या लाभ!! कम से कम अब तो उनके वर्ग-चरित्र को समझ लेना चाहिए।

सच तो यह है कि भगतसिंह के काल से प्रज्ज्वलित क्रान्ति की अग्नि ने यदि सर्वदेशीय उष्ण जन-उभार का रूप ग्रहण कर लिया होता तो 1946 के ज्वार को उस यज्ञ की पूर्णाहुति मान लिया जाता।

उस इतिहास को तरतीब से लिपिबद्ध करने की आवश्यकता है। इन पंक्तियों के लेखक के पास अब न समय है न शक्ति। यह काम अगली पीढ़ी को ही करना है।

नाविक विद्रोह की याद

सुरेन्द्र कुमार

शायद आठवें दशक के अन्त की बात है, मैं हैदराबाद में भगतसिंह के एक निकटतम सहयोगी (अब स्वर्गीय) विजयकुमार सिन्हा के घर पर देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर मेजबान से बातचीत कर रहा था। विजय बाबू कुछ उद्विग्न थे। उनके पुत्र (जिनका कुछ समय बाद देहान्त हो गया था) तथा पुत्रवधू नगर के किसी कॉलेज में पढ़ाने के साथ-साथ क्रान्तिकारियों के साथ काम कर रहे थे।

अचानक मैंने विजय बाबू से पूछा – अगर आपको नए सिरे से अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ करने का सुयोग मिल जाये, तो क्या आप फिर से पिस्तौल या क्रान्तिकारी परचम हाथ में नहीं उठाना चाहेंगे?

कुछ क्षण मौन रहने के उपरान्त वह बोले : "शायद... हाँ...। और तुम?"

"मैं भी शायद वैसे ही विद्रोह की पुनरावृत्ति में अपना योग देता, जैसा 1946 में तत्कालीन रॉयल इण्डियन नेवी में हुआ था," मेरा उत्तर था।

सम्भवतः हम दोनों के ही चिन्तन में भावातिरेक था, परन्तु खण्डित सपनों के कारण हम एक ही मानसिक धरातल पर थे। कौन से सपने थे वे, जिन्होंने मुझे तथा मेरे हजारों हजार साथियों को उस महायज्ञ में शामिल होने के लिए प्रेरित किया था जो दो-ढाई सौ वर्षों के सतत स्वातंत्र्य-संग्राम में पूर्णाहुति की भूमिका अदा करने जा रहा था। हम लोग उस पीढ़ी के "किशोर" थे, जिसने "भारत छोड़ो" का महात्मा गांधी का 1942 का आह्वान सुना था, हड़तालों में, विद्रोह प्रदर्शनों में भाग लिया था, फिर सुभाष बाबू की आजाद हिन्द फौज के विषय में रोमांचकारी तथ्य, किंवदन्तियाँ, "लाल किले की ओर कूच" का आह्वान आदि सुने थे। मेरी पीढ़ी के कुछ लोगों को यशपाल की पत्रिका "विप्लव" पाने का, पण्डित सुन्दरलाल की पुस्तक "भारत में अंग्रेजी राज" आदि के पन्ने उलटने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इनके तेज झोंकों का रोमांचित अनुभव ले चुके हम लोग जब द्वितीय विश्वयुद्ध काल में नौसेना में भर्ती हुए थे, तो फिर अंग्रेजों का सैनिक तंत्र कैसे अछूता रह सकता था। यह दूसरी बात थी कि तब तक अपने अधकचरेपन के कारण हम नहीं समझ सके थे कि हम भी तो एक तरह भाड़े के टट्टू हैं। इसका प्रायश्चित हम लोगों ने शीघ्र ही कर लिया था नौसेना में भर्ती होने के केवल डेढ़-दो साल बाद।

विज़गापट्टम (आज का विशाखापत्तनम) में शायद 18 फरवरी 1946 को कोई ढाई-तीन हजार भारतीय नौसैनिकों ने उस समय के सिंधिया शिपयार्ड के समीप स्थित तटवर्ती "इण्डिया" नामक (नाम मुझे ठीक-ठीक याद नहीं) नौसैनिक केन्द्र के छोटे से परेड ग्राउण्ड पर एक ऊँचे मास्ट पर से अंग्रेजों का झण्डा नीचे उतारा। तालियों की गड़गड़ाहट, इंकलाब जिन्दाबाद, आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद के नारों से वातावरण गूँज उठा था। हमारी एक्शन कमेटी, जिसमें हम कुल मिलाकर चार-पांच थे, एक रात पहले यह तय कर चुकी थी कि बन्दरगाह के अन्दर (समुद्र का पानी दो छोटी पहाड़ियों को भेदते हुए एक विशाल "झील" का रूप धारण कर लेता है। मेरे मन पर अंकित यह नक्शा उन दिनों का है। आज की स्थिति का मुझे ज्ञान नहीं।) "झील" में मौजूद नौसैनिक जलयानों पर आजाद भारत का अधिकार होगा, कोई भी अफसर-अंग्रेज हो या भारतीय-अपने केबिनों या कक्षों से बाहर नहीं जाएगा, सारी तोपें और शस्त्रास्त्र गोदाम एक्शन कमेटी के नियंत्रण में रहेंगे, कमेटी की आज्ञा के बिना कोई जवाबी कार्रवाई नहीं की जाएगी, कानून तथा व्यवस्था का कठोरतापूर्वक पालन किया जायेगा। बम्बई, कराची, आदि में भीड़ के बेकाबू होने का कारण विद्रोह की कार्रवाईयों में समन्वय का अभाव था। वैसे विस्फोट, सर्वत्र क़तई सुनियोजित नहीं था। सब कुछ स्वतः स्फूर्त था। केवल प्रचण्ड राजनीतिक जागृति उत्प्रेरक शक्ति का काम दे रही थी। इस पहलू को देशी-विदेशी अधिकारियों नेताओं ने जानबूझकर नजरंदाज किया। सारे प्रकरण का महत्व यह कहते हुए घटा दिया गया कि नौसैनिकों को घटिया खाना मिलता था, उनके साथ अंग्रेज अफसरों का व्यवहार अच्छा नहीं था। यह सब उस वर्ग की संकीर्ण मनोवृत्ति द्वारा किया गया मूल्यांकन है, जो विद्रोह, विप्लव, सामाजिक उलट-पुलट शब्दों से भयभीत हो जाते हैं।

यह रुख विद्रोह की जांच के लिए बिठाए गये आयोग ने अपनाया, जिसने जून-जुलाई 1946 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। सर फजल अली, अंग्रेज जनरल रीस, एडमिरल पैटरसन, बाद में भारत के प्रधान न्यायाधीश बने मेहरचंद महाजन तथा श्रीकृष्ण स्वामी आयंगर आयोग के सदस्य थे। सबने नौसैनिकों की भावनाओं को देश की चेतना, राजनीतिक झंझावात से पृथक कर उन्हें विशुद्ध आत्मगत कार्रवाईयों का फल बताया। इस बात को यहीं

(पेज 11 पर जारी)

नाविक विद्रोह की याद

(पेज 10 से आगे)

पर छोड़ दें, ये सब लोग हमारे लिए अप्रासंगिक हैं। पर हमें तो सबसे बड़ा सदमा तब पहुंचा था जब महात्मा गांधी सहानुभूति के दो शब्द भी कहने से कतरा गये, सरदार पटेल ने अपने नैसर्गिक भाव से आन्दोलन को कोसा। नेहरू जी, जैसा कि वह हमेशा करते थे इधर भी थे और उधर भी।

आइए, विद्रोह के दिनों की ओर लौटें। बम्बई तथा अन्य स्थानों से हड़ताल, विद्रोह आदि के खत्म होने के समाचार हमें नौसेना के रेडियो ट्रांसमीटरों से मिल रहे थे, जो हमारे नियंत्रण में थे। आधी रात तक चली तूफानी बैठक के बाद एक्शन कमेटी ने अगले दिन बैरकों से बाहर निकलकर शहर में खुले प्रदर्शन तथा आम सभा करने का निर्णय किया। इस बीच विज़गापट्टम के कुछ स्थानीय नेताओं से मेरी भेंट हो चुकी थी। उनके तथा उनकी पार्टियों के नाम याद नहीं। उन लोगों ने सार्वजनिक सद्भावना तथा भौतिक सहायता का वचन दिया, जिसकी हमने कोई अपील नहीं की थी। अलबत्ता पता चला कि जब हम लोग नगर के किले में, जहां प्रदर्शन के उपरान्त आश्रय लिया था, आराम कर रहे थे, तो हम लोगों के लिए भोजन सामग्री उन्हीं लोगों ने जनता की सहायता से मुहैया की थी। अगली सुबह हम सबको किले में एक पूरी रेजीमेंट ने गोरे के नेतृत्व में घेर लिया था तथा नजरबन्द कर हमें सैनिक बंदी शिविर में ले गए थे। इस कारण हमें उन स्थानीय निवासियों का आभार प्रकट करने का समय ही नहीं मिला।

बंदी शिविर में हम एक्शन कमेटी वालों ने समस्त घटनाओं का दायित्व स्वयं ग्रहण करने का निर्णय किया। बाकी सबकी रिहाई की मांग करने के लिए मुझे भूख हड़ताल पर जाने को कहा गया, जो 48 घण्टे तक जारी रही। भूख हड़ताल का यह पहला और अन्तिम अनुभव था। सब बिना आरोप के मुक्त कर दिये गये। बाकी रह गये थे हम चार-पांच। "सम्राट के विरुद्ध विद्रोह" का नेतृत्व करने के आरोप में मेरी भूख हड़ताल को "ठोस" प्रमाण के रुप में प्रस्तुत किया गया-बोर्ड ऑफ इन्क्वाइरी में। हिरासत में शायद दो माह रहना पड़ा-अप्रल या मई तक। बोर्ड की कार्रवाई के समय ही मुझे कठोरतम दण्ड का निर्णय सुनने के लिए तैयार रहने को कहा गया। मगर निर्णय नहीं सुनाया गया। बस इतना कहा गया कि हम लोगों का बम्बई में कोर्ट मार्शल होगा और वहीं सज़ा सुनाई जायेगी।

बोर्ड आफ इन्क्वायरी कई पहलुओं से प्रश्न कर रहा था। हमें एक एक करके बुलाया जा रहा था। मेरे लिए सबसे रोचक बात यह थी कि बोर्ड के तीन अंग्रेज और एक भारतीय सदस्य ने यह जानने का बार-बार प्रयत्न किया कि मैं डांगे, पी.सी. जोशी और कम्युनिस्ट पार्टी के बारे में क्या-क्या जानता हूँ। तब तक मैंने न तो डांगे का नाम सुना था और न पी.सी. जोशी का । तब न तो बुद्धि थी और न ज्ञान। स्कूली दिनों में "विप्लव" के माध्यम से केवल भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल, अशफाकउल्ला के नामों को जाना था। वे ही मेरी उम्र के लोगों के हीरो थे। नौसेना से बाहर आने के बाद जब ज्ञान चक्षु कुछ-कुछ खुले तो पता चला कि राष्ट्रीय आदर्शों के साथ किसने गद्दारी और किसने वफादारी की। यह एक अलग प्रसंग है। आइये इस समय तो लगभग पचास वर्ष पीछे छूट चुके वक्त की ओर चलें। जिस समय विज़गापट्टम के दर्जनों जंगी जहाज़ एक्शन कमेटी के नियंत्रण में थे, उस समय किसी के भी मन में पल भर के लिए यह ख्याल नहीं आया कि कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान, कौन ईसाई। हमारे ही एक साथी थे एम. ए. खान। (बम्बई की एक्शन कमेटी के नेता नहीं) हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के लिए उनकी उत्कण्ठा देखते ही बनती थी, सबके लिए प्रेरणा का स्रोत थी। उन तूफानी महीनों के बहुत बाद दिल्ली में दरियागंज में उनसे सहसा भेंट हुई। 'डान' अखबार के बाहर। तब 'डान' दिल्ली से निकलता था। मैंने उनसे पूछा कि उनका भावी कार्यक्रम क्या है। उन्होंने लम्बी सांस छोड़ते हुए कहा "सुरेन्द्र, क्या हम दिल्ली में जिन्दा रह सकेंगे?" इतने अल्प समय में इतना मानसिक आघात! इस दृश्य की तुलना मैं आज के वातावरण से करता हूं, जब पूरी एक कौम से देश के प्रति अपनी वफादारी की मांग की जा रही है। मुझे हिरासत के समय का वह दिन भी याद है, जब फरवरी माह के अन्त में अचानक आई ठण्डी हवा के झोंकों से हम लोग रात को बेचैन थे कि नींद कैसे आएगी। और तभी हम लोगों का प्रहरी, अब पश्चिमी पंजाब में जा चुके भाग का एक हवलदार लुक-छुपकर हमारे लिए कम्बल, गर्म बनियान आदि लाया था। वह मुसलमान था। क्या उसकी हमारे लिए सहानुभूति हमारे देश-प्रेम से लेशमात्र कम थी?

एक और विचित्र बात थी। हमें यह तो पता था कि हमारा स्टेशन कमाण्डर आयरलैण्ड का है। पर वह भारत से इतनी सहानुभूति रख सकता है, इसका भान भी तब हुआ जब वह हमारे सेलों में आया। उसने द्वार पर खड़े रहते मुझसे कहा था—तुम्हारा देश शीघ्र स्वतंत्र होने वाला है। अफसोस इतना है कि तुम्हें नौसेना छोड़नी पड़ेगी और देश उत्साही, कर्मठ युवकों की सेवा से वंचित रह जायेगा। पता नहीं, नौसेना से पृथक होना कोई गलती थी या नहीं, और मैं कर्मठ था या नहीं, परन्तु उस आयरिश कमाण्डर की सद्भावना पर कोई सन्देह नहीं था।

कोर्ट मार्शल की रस्म अदायगी के लिए हमें चार-पांच को बम्बई नेवल डॉकयार्ड ले जाया गया। अभी कोर्ट मार्शल की तिथि निश्चित नहीं हुई थी, इसलिए मोटर लांचों से प्रहरियों के साथ हमें एलिफेण्टा केव्ज़ में पहुंचाया गया, जहां हमें इटालियन युद्धबन्दियों के लिए विशेष रूप से बनाए गए बैरकों में रखा गया। इस बीच चन्द एक क्षण ऐसे थे, जब मेरे मन में भय तथा संशय ने सहसा जन्म लिया था। जीवन के लिए भय? शायद नहीं, शायद हाँ, पर यह भय जरूर पैदा हुआ था कि मोटर लांचों से ये लोग क्या हमें किसी जंगी जहाज में बिठाकर अफ्रीका तो नहीं भेज रहे हैं! क्या अपनी देशभूमि, अपने माता-पिता, भाई-बहिन सबसे नाता अन्तिम रूप में तो नहीं टूट रहा है? सूरज तप रहा था। इसलिए धूप का चश्मा पहन लिया। कोई मेरी भरी आंखें न देख बैठे।

आखिर कोर्ट मार्शल का दिन आया। नेवल कैप उतारने के लिए कहा गया, जो मैंने नेवल ऑफिसर कमाण्डिंग इन-चीफ के सामने ही नीचे समुद्र में फेंक दी। मेरे हाथ में एक लम्बा-चौड़ा कैरेक्टर सर्टिफिकेट पकड़ा दिया गया, जिस पर लाल अक्षरों में 'डिसमिस्ड' (बर्खास्त) और डिबार्ड फ्रॉम गवर्मेण्ट जॉब्स (सरकारी नौकरियों में प्रवेश निषेध) अंकित था। इस सम्मानजनक प्रमाणपत्र को मुझसे एक ही बार मांगा गया था। अम्बाला निवासी मेरे ताऊजी के घनिष्ठ मित्र थे डिप्टी डॉयरेक्टर जनरल ऑफ सिविल एवियेशन, जो बाद में पाकिस्तान में इसी विभाग में डॉयरेक्टर जनरल बन गये थे। ताऊजी के कहने पर मैं दिल्ली में उनसे मिला। सब टेस्टों में पास हो गया। "बेटे कल अपना नेवल सर्टिफिकेट ले आना। तुम्हारा अप्वायण्टमेण्ट हो चुका है।" उन्हें वास्तविकता बताए बिना उल्टे पांव लौटा। यह उनसे आखिरी भेंट थी और किसी सरकारी नौकरी के लिए आखिरी प्रयास।

मिलिटरी गारद के साथ मुझे गढ़वाल जाने के लिए देहरादून एक्सप्रेस में बिठाया गया। बी.टी या बम्बई सेन्ट्रल से नहीं अपितु कोई 6-7 स्टेशन आगे। याद नहीं कहां। ऐसा इसलिए कि वापस बम्बई न लौटूं। पर मुझे तो अपना सामान लेने विज़गापट्टनम लौटना था। विज़ाग या वाल्टेयर स्टेशन पर मैं गाड़ी से उतरा ही था कि पुलिस के एक अधिकारी ने एक टाइप किया हुआ नोटिस पकड़ाया। अंग्रेजों के जासूसी जाल के कारगर होने का प्रमाण था यह। कागज पर लिखा था कि विज़गापट्टनम में मेरी उपस्थिति से कानून और व्यवस्था के भंग होने की आशंका है, क्योंकि नौसेना में अशान्ति फैलाना मेरा उद्देश्य है। अतः मुझे 24 घण्टे में शहर छोड़ने और 6 माह तक प्रवेश न करने का आदेश दिया गया। वैसे तब तक कैबिनेट मिशन की नियुक्ति की घोषणा ही नहीं हुई थी, अपितु भारत की स्वतंत्रता के लिए वार्ताएं शुरू भी हो चुकी थीं। तो निष्कासन मेरा नहीं वरन् उस घृणित साम्राज्यवाद का हो रहा था, जिसके विरुद्ध 1857 में बहादुर शाह जफर ने जंग का ऐलान किया था और जिसके मरणासन्न शरीर पर आखिरी कील नौसेना के विद्रोह ने ठोंकी थी। शायद लाला लाजपत राय की वसीयत पूरी करना हमारे भाग्य में लिखा था। इस विद्रोह के विषय में कभी-कभार मेरे राजनीतिमना मित्र पूछ बैठते हैं कि अगर यह विद्रोह पूर्व-नियोजित नहीं था, तो यह कैसे हुआ कि जल हो या स्थल पूरी की पूरी नौसेना इसमें कूद पड़ी थी। यों तो राष्ट्र या जाति विशेष की हर घटना में राजनीति कहीं न कहीं राजनीति अवश्य छुपी रहती है। पूर्वगामी क्रान्तिकारी लहरों, "भारत छोड़ो" के शंखनाद, सुभाष बाबू की आजाद हिन्द फौज की पहले चर्चा की जा चुकी है। जिस बात पर जोर देना आवश्यक है, वह यह है कि युद्धकाल के दौरान नौसेना का स्वरूप बदलता चला गया था। जहां पहले अपर प्राइमरी पास सागर तटवर्ती लोगों का नौसेना में बाहुल्य था, वहां उनके स्थान पर कम से कम हाईस्कूल, इण्टर, यहां तक कि विश्वविद्यालयीन स्नातकों ने भी नौसेना में प्रवेश ले लिया था। यह सार्वजनिक नवजागरण था, जिसने स्वतंत्रता के पूरे यज्ञ के लिए हवनकुण्ड में विस्फोटक सामग्री का काम किया था। जनता ने साथ दिया, पार्टियों, सर्वोपरि बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी के सदर मुकाम ने नौसैनिकों में उत्साह और उमंग की संवृद्धि की। तो फिर यह खराब भोजन और अंग्रेजों के दुर्व्यवहार की बात कहां से उठती है? स्थिति को इन दो मुद्दों तक समेटकर रख देना उसका मात्र अतिसरलीकरण है। जांच के सदस्य स्वर्गीय जस्टिस मेहरचन्द महाजन की नौकरशाह आँखें बस इतना ही देख पायीं (देखें गतवर्ष प्रकाशित उनकी आत्मकथा "लुकिंग बैक") भारत के सुशिक्षित वर्ग के युवकों के आगमन पर अंग्रेज अधिकारियों का रुख स्पष्टतः बदलता दिखाई देने लगा था। अतः दुर्व्यवहार विद्रोह का मुद्दा कतई नहीं था। सशस्त्र सेनाओं को भोजन सामग्री उस समय भी ठेकेदारों की जमात ही सप्लाई करती थी, आज भी यही करती है। उसकी क्वालिटी भी तो समय का प्रवाह ही निर्धारित करता है। इसके लिए बजट अलॉट करने वाले टेण्डर स्वीकार करने वाले, मूल पास करने वाले अन्दर-बाहर के लोगों की मिलीभगत पहले भी थी और आज भी है। मुट्ठी गरमाने की तब भी गुंजाइश थी और आज भी है। पर यह तो विषयान्तर है। लेखक तो केवल इतना कहना चाहता है कि हजारों-हजार लड़कों ने जब यूनियन जैक उतारा था और विद्रोह का बिगुल बजाया था, तो उनमें से हरेक जानता था कि सशस्त्र सेना अधिनियमों में विद्रोह के लिए केवल मृत्युदण्ड का प्रावधान होता है। सबके सब यह जानते हुए भी सिर पर कफन बांधकर मैदान में उतरे थे। उनके लिए साग-सब्जी, मांस-मछली की क्वालिटी, व्यक्ति विशेष का व्यवहार कोई बड़ा अर्थ नहीं रखते थे। यह तो एक उदात्त ध्येय को कलंकित करना है। पर यहां इस बात की चर्चा भी कर दूं कि विद्रोह के जो कारण उछाले गये, वे एक तरह हम लोगों में से कुछ की रणनीति का फल भी थे। आजादी सन्निकट थी, नये युग का आगमन अवश्यंभावी हो चुका था। तो फिर हम लोगों में से कुछ ने जरूरी समझा कि सम्राट के प्रति विद्रोह की बात को न छेड़कर भोज-पान तथा दुर्व्यवहार का मुद्दा बनाया जाए ताकि विदा होते दुश्मन को हताशा में कोई और, आखिरी कुटिलतापूर्ण दांव न खेलने दिया जाए—यानी अनावश्यक मृत्युदण्ड, आजीवन कारावास, देश निर्वसन जैसे निर्णय थोपने का उन्हें मौका न दिया जाए। जांच कमीशन के सदस्य अपने पेशे के विशेषज्ञ होने की तुलना में ब्रिटिश भक्त अधिक थे। इसलिए उन्हें उनकी ही सोच-मनोवृत्ति तक सीमित रखा गया। कानूनी उलझनों में उलझाकर इससे आगे वे सोच भी नहीं सकते थे।

मुझसे अक्सर यह भी पूछा जाता है कि नौसेना विद्रोह पर अधिक क्यों नहीं लिखा गया। ये प्रश्न हितैषियों के ही होते हैं। पर मैं उल्टे प्रश्न करता हूं कि क्रान्ति की अन्य महती युगान्तरकारी घटनाओं पर जितना कुछ लिखा गया है, उनका क्या हश्र हुआ? काकोरी केस, केन्द्रीय धारा सभा में भगतसिंह द्वारा बम फेंका जाना, पेशावर काण्ड के नायक चन्द्रसिंह गढ़वाली, दिल्ली के एक कोने में मृत्युपर्यन्त उपेक्षित पड़े रहे मन्मथदास गुप्त—इन सबकी स्मृति इतिहास में क्या अक्षुण्ण रहेगी? उन्होंने जो करना था, कर दिया, नौसेना के भी सहस्त्रों युवकों ने स्वातंत्र्य आन्दोलन में जो भूमिका अदा करनी थी, वह उन्होंने कर दी। यदि देश तथा जनता उन्हें स्मरण करते हैं तो इस तरह वे स्वयं अपना ही सम्मान करते हैं। जहां तक क्रान्ति के मील के पत्थरों का प्रश्न है, उन पत्थरों के नीचे पवित्र आदर्शों के जो बीज दबे पड़े हैं वे आशा करनी चाहिए, सड़ नहीं गए हैं, शायद कभी अंकुरित हो उठें, प्रस्फुटित हो जाएं और वे आदर्श अपना रंग लाने लगें। 1871 की पेरिस क्रान्ति ने 1917 में रूस की अक्टूबर क्रान्ति का पथ प्रशस्त किया, उस अक्टूबर क्रान्ति को उसकी सन्तान संभाल नहीं पायी, परन्तु उसकी जड़ें तो इतनी मजबूत हैं कि पता नहीं कब और कहां किसी और भी भव्य, उत्तुंग, प्रलयकारी क्रान्ति को जन्म दें। संसार से क्या भूख, गरीबी, शोषण, नवउपनिवेशवादी अभिशाप मिट गए हैं? इसी में समकालीन विभ्रान्तियों के निवारण का बीज छुपा है।

मजदूर वर्ग पर एक और हमला

विशेष आर्थिक क्षेत्र का कानून

खुली अर्थव्यवस्था के इस युग में दुनियाभर के पूँजीवादी लुटेरों को भारत में जिस कानून के पारित होने की प्रतीक्षा थी, कांग्रेस नेतृत्व वाली संप्रग सरकार ने अन्ततः उसे घोषित कर दिया। पिछले 9 फरवरी को केन्द्र सरकार ने विशेष आर्थिक क्षेत्र के नियमों की घोषणा कर दी। इस प्रकार मुनाफाखोरों की जमात को मजदूरों के बेरोकटोक दोहन का एक और कानूनी अधिकार मिल गया।

इधर वामपंथियों द्वारा समर्थित सरकार ने घोर मजदूर विरोधी इस कानून को बिना किसी बाधा के घोषित कर दिया, उधर योजना आयोग के कुख्यात उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह आहलूवालिया ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मजदूर संघ एटक के एक समारोह में श्रम कानूनों को मालिक पक्षीय बनाने के लिए फिजा बनाते हुए कहा कि देश के सम्पूर्ण विकास के लिए श्रम कानूनों को लचीला बनाना आवश्यक है।

पिछले साल संसद में पारित विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम के जिन प्रावधानों की घोषणा वाणिज्य मंत्री कमलनाथ ने की है उससे वैश्विक लुटेरों की बाँछें खिल गयी हैं। इस नये कानून के तहत (जिसके किसी भी नियम का बदलाव सिर्फ संसद की मंजूरी के बाद ही किया जा सकता है। इसमें लगने वाले उद्योगों को 15 साल के लिए आयकर की छूट मिलेगी। इसके साथ ही सब्सिडी, कौड़ियों के मोल जमीनें और टैक्सों आदि में ढेरों रियायतें इन मुनाफाखोरों को मिलेंगी। घरेलू बाजार में इस क्षेत्र के उत्पाद की बिक्री का सौ फीसदी का प्रावधान है।

कमलनाथ के अनुसार देश में 117 विशेष आर्थिक क्षेत्रों को मान्यता दी गयी है। इनमें बहुउत्पादीय विशेष आर्थिक क्षेत्र कम से कम एक हजार हैक्टेयर में फैला और सेवा मुहैया कराने वाला विशेष आर्थिक क्षेत्र कम से कम दो सौ हैक्टेयर में होगा। हीरे-जवाहरात, सूचना प्रौद्योगिकी, बायो तकनीक और दूसरे विशेष क्षेत्र कम से कम 10 हैक्टेयर में फैले होंगे। इससे इनकी विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र होगा जहाँ सारा काम एक ही जगह होगा।

विशेष आर्थिक क्षेत्र मुक्त व्यापार के दौर की एक ऐसी स्थिति है जिसमें मजदूरों के खुले और बेरोकटोक दोहन की खुली छूट रहती है। ये हर लिहाज से अवरचनात्मक और विशेष सुविधाओं से युक्त औद्योगिक बस्तियाँ होती हैं। जिन्हें एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन भी कहते हैं। ये क्षेत्र भारत जैसे पिछड़े देशों के सस्ते श्रम व कच्चे माल का निर्यातोन्मुख उत्पादन करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए आरक्षित होते हैं। अनेक विशेष छूटों के अतिरिक्त इन कम्पनियों की आवश्यकताओं के अनुरूप यहाँ की पूरी व्यवस्था औपनिवेशिक किस्म की होती है।

प्रायः कँटीले तार लगी ऊँची दीवारों से घिरी इन औद्योगिक बस्तियों का नजारा किसी नात्सी श्रम-शिविर (हिटलर द्वारा यहूदियों के लिए बनाये गये शिविर) जैसा लगता है। यहाँ मजदूरों के सोने की जगहें भी बनी होती हैं। इस क्षेत्र में ट्रेड यूनियन गतिविधियों, राजनीतिक कार्रवाईयों और खुली आवाजाही पर प्रतिबन्ध रहता है। यहां जाँच और निगरानी के लिए (निजी व सरकारी दोनों तरह के) अर्द्धसैनिक बल तैनात रहते हैं।

ये लगभग सभी प्रकार के श्रम कानूनों के बन्धनों से मुक्त क्षेत्र होते हैं और यहाँ मालिकों का अपना कानून चलता है। इनमें बेहद कम मजदूरी पर पुरुष और स्त्रियाँ खटाये जाते हैं, जहाँ काम के घण्टों का भी कोई निश्चित दायरा नहीं होता। 10-12 घण्टे की शिफ्ट तो सामान्य बात होगी।

इनमें कुछ इकाइयाँ ऐसी भी हैं जो ठेके पर घरेलू स्त्रियों से या उन्हें काम पर रखने वाली लघु औद्योगिक इकाइयों (या इन्सेलरीज) से काम कराती हैं और इस तरह उन्हें असंगठित मजदूरों का श्रम बेहद सस्ती दरों पर हासिल हो जाता है।

दुनिया के कई गरीब मुल्कों में विशेष आर्थिक क्षेत्र पहले से ही काम कर रहे हैं जहाँ मुनाफाखोरों की समृद्धि और वहाँ काम करने वाले मजदूरों की दयनीय स्थिति इस विशेष क्षेत्र की भयावहता का जीता-जागता उदाहरण है। अब इस नये कानून से भारतीय मजदूरों की दुर्दशा के एक नये दौर की शुरुआत हो चुकी है।

यह विशेष आर्थिक क्षेत्र मुनाफाखोरों के लिए कैसे दुधारू गाय साबित होते हैं, इसकी सच्चाई कमलनाथ के इस बयान में ही निहित है कि 'विशेष आर्थिक क्षेत्र के नियम लागू होने के बाद विशेष आर्थिक क्षेत्र की बड़ी व बहुउत्पादक कम्पनियाँ जो वित्तीय मन्दी झेल रही हैं, अब आगे की तरफ देखेंगी।'

लेकिन यहाँ यह गौरतलब है कि चाहे जितनी भी बाड़ेबन्दियाँ कर दी जायें, जितने भी अवरोध खड़े कर दिये जायें, भारी पैमाने पर मजदूरों का एक जगह संकेन्द्रण अपने आपमें मजदूर जमात की ताकत को बढ़ाने वाला और पूँजीपति वर्ग की कब्र खोदने वाला साबित होगा।

यह एक इतिहाससिद्ध बात है कि 19वीं सदी का 16-18 घण्टे खटने वाले और अनुभवहीन मजदूर वर्ग ने अपने को न केवल संगठित किया था, लड़कर एक-एक करके अधिकार लिये थे बल्कि क्रान्तियाँ करके दुनिया के एक बड़े हिस्से में अपना राज्य भी कायम किया था और मानवता को एक उन्नत मंजिल तक पहुँचाया।

आज वक्ती तौर पर मेहनतकश वर्ग पराजय और उलटाव के दौर से गुजर रहा है। लेकिन 21वीं सदी मेहनतकशों की सदी होगी, यह तय है। यह भी निश्चित है कि आने वाला संघर्ष पहले से ज्यादा कठिन, जटिल और ज्यादा जुझारू होगा, लेकिन पहले से ज्यादा ठोस जमीन पर और पुराने अनुभवों से लैस होगा, इसलिए निर्णायक होगा।

इसलिए मजदूर वर्ग के लिए आने वाले साल बेहद चुनौतीपूर्ण होंगे।

– आकाशदीप

अमेरिकी साजिशों के कारण इराक में भड़कती बेकाबू हिंसा की आग साम्राज्यवादियों को ही निगल जाएंगी

इराक में अमेरिकी कब्जे के खिलाफ वहां के प्रतिरोध योद्धाओं का मुक्ति संघर्ष लगातार आगे बढ़ रहा है। कब्जावर गठबंधन सेनाओं के बढ़ते जुल्मो-सितम ने इराकी जनता के इरादों को फौलादी बना दिया है। इराक के विश्व के दूसरे सबसे बड़े तेल भंडार पर नियंत्रण प्राप्त करने में अमेरिकी साम्राज्यवाद को भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में क्या निकट भविष्य में यह संभव है कि अमेरिका इराक से अपनी सम्मानजनक वापसी का कोई रास्ता निकाले? पूँजी की आंतरिक गति से तय होने वाली साम्राज्यवादियों की फितरत को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि उनकी अक्ल आसानी से ठिकाने नहीं आती। वे एकदम से लुटपिट कर ही इराक को छोड़ेंगे या फिर उन्हें वियतनाम की तरह वहां से खदेड़ा जाएगा।

हाल के दिनों का घटनाक्रम बताता है कि विकसित होते इराकी संघर्ष को देखकर हमलावर अमेरिकी और ब्रिटिश सरकारें दंग हैं क्योंकि वे प्रतिरोध के इस स्तर के लिए तैयार नहीं थीं। तथाकथित पुनर्निर्माण बजट के 22 फीसदी हिस्से को सैन्य ठेकेदारों की तरफ मोड़े जाने के बावजूद प्रतिरोध संघर्ष को सैनिक तौर पर पराजित करने के प्रयास विफल हो चुके हैं। इस कोष का निर्माण पानी एवं सीवेज परियोजनाओं के लिए किया गया था।

अमेरिकी कब्जे के इन तीन सालों में प्रतिरोध की ताकतें नये-नये हुनर और अनुभव हासिल करती गयी है। कठपुतली इराकी चुनावों, सद्दाम हुसैन के मुकदमे के फिर से शुरू होने और हमले की तीसरी बरसी के बाद पूरे इराक में सशस्त्र कार्रवाई की लहर दौड़ पड़ी है। अभी पिछले दिनों गुरिल्ला बलों के पुलिस एवं सरकारी अधिकारियों को निशाना बनाने से नौ पुलिस अधिकारी और अमेरिकी कब्जावरों के साथ सहयोग कर रही एक इस्लामिक पार्टी का मुखिया मारा गया।

इसके ठीक तीन दिन पहले दो अमेरिकी मरीन सैनिक उस वक्त मारे गये जब उनका वाहन सड़क किनारे के एक बम से जा टकराया। फरवरी के शुरू में इराक में मरने वाले ब्रिटिश फौजियों की संख्या 100 को पार कर गयी। इराक में मरने वाले अमेरिकी सैनिकों की संख्या 4 हजार का आंकड़ा कर रही है।

इस बीच, इराक के अग्रणी सुन्नी राजनीतिक गठबंधन ने हड़तालों और नागरिक अवज्ञा की मुहिम शुरू करने की धमकी दी है। गठबंधन मांग कर रहा है कि इराकी सरकार द्वारा चलाये जाने वाले शिविरों में कैद सभी बंदियों की रिहाई के साथ-साथ गृहमंत्री और उनके सहयोगी इस्तीफा दें, गृह मंत्रालय की सुरक्षा यूनिटें काम करना बंद करें। गठबंधन का दावा है कि मौजूदा इराकी सरकार "आतंकवादियों" को परास्त करने के नाम पर नागरिकों को निशाना बना रही है।

इराक की स्थिति तेजी से बेकाबू होती जा रही है। शिया मिलिशियाओं के बीच घातक प्रतिद्वंद्विता चल रही है, विभिन्न क्षेत्रों के बीच तनाव कायम है, नेता और सैन्य एवं पुलिस अधिकारी भ्रष्ट और अक्षम हैं, फैसी अर्थव्यवस्था के ऊपर चतुर्दिक संकट छाया हुआ है और कुर्दिस्तान एक प्रकार से अलग हो चुका है और विदेशी कब्जे के खिलाफ चहुं ओर राष्ट्रवादी भावना व्याप्त है।

बढ़ते सशस्त्र गुरिल्ला आंदोलन और कठपुतली सरकार के खिलाफ नागरिक अवज्ञा अभियान की आशंका से निपटने के लिए कब्जावर ताकतें संघर्ष कर रही हैं। अमेरिका के जनरल एकाउंटिंग आफिस की हाल की एक रिपोर्ट बताती है कि दिसंबर 2004 में हमलों की संख्या उसी साल मार्च में हुए हमलों के मुकाबले 250 फीसदी अधिक थी। अकेले अक्टूबर में ही प्रतिरोध की ताकतों ने कमोबेश तीन हजार सशस्त्र कार्रवाइयां कीं। ज्यादातर हमलों में कब्जावर गठबंधन सेनाओं को निशाना बनाया गया। अब जबकि इराकी सुरक्षा बलों ने काम करना शुरू कर दिया है तो उनके खिलाफ कार्रवाइयों की संख्या में वृद्धि हुई है।

एक वरिष्ठ सैन्य अधिकारी ने माना है कि प्रतिरोध योद्धाओं को पुनः शस्त्रसज्जित होने और बार-बार हमला करने में इसलिए देर नहीं लगती कि वे इराक की आबादी के बीच घुलेमिले हैं।

सशस्त्र इराकी प्रतिरोध तीन समूहों में बंटा हुआ है। पहले वाले को देशभक्त समूह के रूप में जाना जाता है और यह बाथ पार्टी के सदस्यों, देशभक्त कम्युनिस्टों और अरब जगत के लोगों से मिलकर बना है। दूसरा समूह पहले की इराकी सेना के सैनिकों और अधिकारियों से मिलकर बना है और तीसरा वाला समूह छोटे-छोटे सुन्नी एवं ईसाई धार्मिक संगठनों से मिलकर बना है।

पहले समूह में बाथ पार्टी के सदस्यों और स्वयं पार्टी के बीच अंतर करना आवश्यक है क्योंकि बाथ पार्टी औपचारिक रूप से विघटित हो चुकी है। इसका अर्थ यह है कि उसके सदस्य और देशभक्त कम्युनिस्ट स्वयं राजनीतिक दल के सदस्य के रूप में प्रस्तुत नहीं करते बल्कि वे वहां पर विचारधारात्मक पहचान के साथ एक धारा के रूप में हैं।

इन तीनों समूहों में से धार्मिक समूह सबसे छोटा समूह है और यह इराकी प्रतिरोध के लगभग 10 फीसदी हिस्से पर ही नियंत्रण रखता है। लेकिन साम्राज्यवादी मीडिया लगातार इस रूप में पेश करता है मानो पूरा का पूरा इराकी प्रतिरोध संघर्ष इस्लामी कट्टरपंथियों के नियंत्रण में चल रहा है।

साम्राज्यवादी बांटो और राज करो की नीति पर शुरू से चलते आये हैं। इराक में अमेरिका जिस तरह की नीतियों पर चल रहा है उसे देखते हुए इस बात की आशंका से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वहां उसकी इच्छा से स्वतंत्र गृह-युद्ध जैसे हालात बन जाएं। लेबनान और भूतपूर्व युगोस्लाविया जैसे देशों में अमेरिकी साम्राज्यवाद की कुत्सित चालों के चलते भीषण जातीय हिंसा फट पड़ी थी, जिसमें वहां की जनता को भारी विनाश का सामना करना पड़ा था। समारा में अल अक्सरिया मस्जिद के विनाश के समय से इराक शिया और सुन्नी मुस्लिम मिलिशियाओं के बीच गुटीय हिंसा की चपेट में है। प्रतिशोध और जवाबी प्रतिशोध का दुष्चक्र सैकड़ों लोगों की जान ले चुका है।

दसियों लाख इराकियों का जीवन नरक से भी बदतर बन चुका है, उनके पास न तो कोई नौकरी है और न ही सम्मानजनक तरीके से जीवनयापन करने का दूसरा कोई जरिया। और तो और बिजली, पेयजल और स्वास्थ्य सेवा जैसी सभ्य नागरिक जीवन की पूर्व शर्तों का भी अभाव है। रियायती दरों पर ईंधन और खाद्यान्न जैसे थोड़े से कल्याणकारी प्रावधानों से व्यवस्थित तरीके से हाथ पीछे खींचा जा रहा है। हर महीने सैकड़ों लोगों की जान लेने वाली आपराधिक हिंसा के साथ जंगलराज कायम है। किसी वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य के नहीं होने से लोग सुरक्षा और सहायता दोनों के ही लिए परिवार, जनजातीय या धार्मिक ताने-बाने की ओर मुखातिब हुए हैं।

अमेरिकापरस्त शिया पार्टियों ने अपने विरोधियों के खिलाफ आतंकराज कायम करने के लिए सरकार के ऊपर अपनी पकड़ का इस्तेमाल किया है। बगावत के खिलाफ अमेरिकी कमान में अभी भी काम करने वाली इराकी सेना की बहुत सी यूनिटों की भर्ती शिया इलाकों से की गयी थी। इनमें से कुछ यूनिटें यह बात छिपाने की कोशिश नहीं करतीं कि उनकी वफादारी सबसे पहले शियाओं के धार्मिक नेताओं के प्रति है और यह कि वे सुन्नियों के खिलाफ हैं।

आंतरिक मंत्रालय पर सुप्रीम काउंसिल फार दि इस्लामिक रिवोल्यूशन इन इराक (एससीआईआरआई) का नियंत्रण है, जिसने कि अपने ईरान में प्रशिक्षित बद्र ब्रिगेड के जंगजुओं को पुलिस की यूनिटों में भर्ती किया है और मौत के दस्तों के रूप में उन्हें तैनात किया है। बहुत से सुन्नियों और धर्मनिरपेक्ष लोगों को भयानक तरीके से मौत के घाट उतार दिया गया है। शियाओं के दबदबे वाली सरकार द्वारा सुन्नी आबादी को निशाना बनाये जाने के चलते अलकायदा जैसे सुन्नी चरमपंथी संगठनों द्वारा शिया नागरिकों

(पेज 6 पर जारी)